

भी दौलतदाम गोड़ प्रणीत-

कुण्डनिमण-स्थानाकार पद्धति



संकालन कार्ता - अश्वोक कुमार गोड़

- अकाशाक्ष -

ठाकुर प्रसाद पुस्तक मण्डार
रु३०/- काठीगाँव, बादामी

Indological Truths

17 th Pusplata of Vedacharya Pt. Daulatram gaur Smarak
Granthmala

WRITTEN By Pt. DAULATRAM GAUR—

KUND NIRMAN

Swahakar Paddhati

Editor

ASHOK KUMAR GAUR

Published by

THAKUR PRASAD PUSTAK BHANDAR

Kachouri gali Varanasi - 221001

First Ed.]

Basant panchami - 1982

[REDACTED]

Published by :

THAKUR PRASAD PUSTAK BHANDAR

Kachouri gali varanasi - 221001

Phone - 66420

ALLRIGHTS RESERVED

First Adition

printed

Satya Shiva press

K. 54/154, Daranagar,

Varanasi - 1

Indological Truths

वेदाचार्यं पं० दीलतराम गौड़ स्मारक ग्रंथमाला की १७ वीं पुष्पलता

दीलतराम गौड़ वेदाचार्य प्रणीत—

कुण्डनिर्माण स्वाहाकार पद्धतिः

[टिष्ठणी तथा परिशिष्ट से अलंकृत]

संकलनकर्ता—

श्री अशोक कुमार गौड़

प्रकाशक—

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचोड़ी गली, वाराणसी-२२१०१

प्रथम संस्करण]

३० जनवरी बसंत पंचमी

[मूल —]

प्रकाशक—

ठकुर प्रसाद पुस्तक भंडार

कचोड़ी गली, वाराणसी-२२१०११

दूरभाष-६६४२०

[स्वाधिकार सुरक्षित]

प्रबन्ध संस्करण-१९८२

मुद्रक—

सत्यशिव प्रेस,

दारानगर, वाराणसी

भूमिका

वेदाचार्य पं० दीलतराम गौड़ स्मारक ग्रन्थमाला की १७ वीं पुष्टिलता
‘कुण्ड निर्माण स्वाहाकार पद्धति’ आप सभी के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा है ।

पिता श्री के द्वारा कुण्ड निर्माण के विषय में लिखित सभी तथ्यों को
एकत्रित करने के उपरान्त ही मैंने इस किताब के प्रकाशन की योजना बनाई ।

जिस प्रकार नर एवं नारी एक दूसरे के पूरक कहे गये हैं । उसी प्रकार यज्ञ
एवं कुण्ड भी एक दूसरे के पूरक हो है । क्योंकि यदि यज्ञ के पूर्व कुण्ड की
रचना न की जाये तो यज्ञ का होना असंभव है । अतः यज्ञ एवं कुण्ड को
एक दूसरे का पूरक कहा जावे तो, यह अतिशयोक्ति न होगी ।

इस छोटी सी पुस्तक में कुण्डनिर्माण से सम्बन्धित विषयों का समा-
वेश है । कुण्ड निर्माण के साथ ही साथ पुस्तक को अत्यधिक उपयोगी बनाने के
उद्देश्य से मैंने, इस पुस्तक में विभिन्न प्रकार के यज्ञों के स्वाहाकारों का भी
समावेश कर दिया है । जो निःसन्देह उपयोगी है ।

आशा है कि यह पुस्तक अपने उद्देश्य में निःसन्देह सफल होगी ।

अशुद्धियों एवं त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ ।

भारतीय कर्मकांड मण्डल
म.म.पा. विद्याधर गौड़ लेन
डी ७१५ सकरकंद गली }
वाराणसी-उत्तर प्रदेश }
वाराणसी-उत्तर प्रदेश

भवदीय
अशोक कुमार गौड़

एवं अन्तर्भुक्तम् एव विद्यते । एवं अन्तर्भुक्तम् एव विद्यते

प्रणेता —



स्वर्गीय पण्डित दौलतराम गौड़ वेदाचार्य

एवं अन्तर्भुक्तम् एव विद्यते । एवं अन्तर्भुक्तम् एव विद्यते

श्रौत और स्मार्तादिकर्मोंमें कुण्ड तथा मण्डप मुख्य हैं

या गौण—

श्रौत; स्मार्त और तन्त्रिक ये तीन प्रकार के कर्म हैं। पौराणिक कर्म तांत्रिक में ही अन्तर्भूत हैं। पौराणिक कर्मको पृथक् मानने वाले चार प्रकार के कर्म मानते हैं। श्रौत और स्मार्त कर्म के प्रतिपादक आश्वलायन आदि श्रौतसूत्र, गृहसूत्र मन्वादिस्मृति और गौतमादि धर्मसूत्र भी हैं। इनमें कुण्ड-मण्डप की परिभाषा देखने में नहीं आती है। परन्तु मण्डप का यज्ञशाला शब्दसे और कुण्ड का वेदी शब्द से व्यवहार होता है। 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति' वेदामिव हुताशनः अभी वेदि परितः क्लृप्तधिष्ण्याः—इत्यादि स्थलों में वेदीशब्दसे कुण्ड का ग्रहण है और यज्ञशाला, पत्नीशाला इत्यादि स्थलों में मण्डप के लक्षण से यज्ञशाला आदि का लक्षण भिन्न है। तान्त्रिक तो सम चतुरस्र चार द्वार, चार उपचार मध्य में ऊँचा मण्डप कहते हैं। वैदिक तो एकद्वार, पताका आदि रहित तथा मध्योन्नति रहित मण्डप बनाते हैं। योनी, गर्त आदि सहित कुण्ड तान्त्रिकों को अभिमत है। वैदिकों को कुण्ड में योनि गतादि अभिमत नहीं हैं।

काम्यकर्म में कुण्ड-मण्डपकी आवश्यकता —

नित्यं नैमित्तिकं हित्वा सर्वमन्यत्समण्डपम्—कोटिहोमपद्यति और मात्स्योक्तवचन से काम्यकर्म में मण्डप आवश्यक है। नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में ऐच्छिक है। नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत्। शारदातिलक मत से नित्य और नैमित्तिक कर्म स्थण्डिल या कुण्ड में करें। परन्तु काम्यकर्म को कुण्ड में ही करे।

कुण्ड-मण्डप का प्रयोग—

तीन प्रकार के कर्म होते हैं—दृष्टफल अदृष्टफल और दृष्टादृष्टफलक। वृष्टिकामः कारीर्या यजेत्—इत्यादिश्रुति से विहित कारीरेष्टचादि वृष्टिरूप ऐहिक फल का जनक होनेके कारण वृष्टफलक कर्म है। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् इत्यादि विधिबोधत अग्निहोत्रादि अदृष्टफलक कर्म है। दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् इत्यादि इन्द्रियकामनाके लिये अग्निहोत्रविधि दृष्टादृष्टफलक है। अग्निहोत्रविधि स्वस्वरूपसे अदृष्टफलको दधिरूप गुणांशसे दृष्ट इन्द्रियफलको भी उत्पन्न करता है। प्रश्न—प्रतियोगी और अभाव का विरोध होने के कारण दृष्ट और अदृष्ट का एकत्र समावेश कैसे होगा। उत्तर—हम दृष्टादृष्टका एकत्र समावेश नहीं कहते हैं। किन्तु दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् यह गुणविधि दृष्टादृष्टफलक है इतना ही कहते हैं। यह विरुद्ध नहीं है घट और घटध्वंस दोनों का कारण जैसा दण्ड है इसीप्रकार कुण्ड और मण्डप दृष्ट और अदृष्ट उभयफलक हैं। वप्रर्गतादि अंशसे हविका सम्यक् पाक होता है और होताओंको ज्वालादि संबन्ध नहीं होता इसलिये कुण्ड दृष्टफलक है और नाभी, योनी, कण्ठ आदि अंशसे अदृष्टफलक भी है। वहाँ दृष्टफल संभव नहीं है। विधिवलात् नाभ्यादि निमर्ण होता है अतः स्वर्गादि अदृष्टफलकी वहाँ कल्पना की जाती है। स स्वर्गः सर्वानि प्रत्यभीष्टत्वात् इत्यादिशास्त्रसे अश्रुतफल में स्वर्गफल माना जाता है। एवं मण्डप भी आतप वर्षादिका निवारक होने से दृष्टफलक है और स्तंभपरिमाण, स्तंभनिवेशका प्रकार विशेष इतर दारु का संनिवेशप्रकारविशेष इत्यादि नियमांशसे अदृष्टफलक भी है। जैसे त्रीहीनवहन्ति—यहाँ पर अवहननविधि तण्डुलनिष्पादक होने के कारण दृष्टफलक है और अवहनन से ही निष्पादक करना नखविदलनादिना नहीं करना इत्यादि नियमांशसे अदृष्टफल भी है।

कुण्डस्वरूप—

तत्त्वमनुरूपपरिमाणवत् मेखला-गर्त-कण्ठ-योनि-नाभिमत्

अग्न्यायतनं तान्त्रिकाभिमतं कुण्डमुच्यते ।

स्थण्डलस्वरूप—

हवनकर्मपर्याप्तो वालुकादिद्रव्यैरास्तृतश्चतुरेकाद्यङ्गुलोत्सेधो
भूभागः स्थण्डलम् । इसमें कुण्डधर्म मेखलादि कोई मानते हैं कोई
नहीं मानते हैं । अतः मेखलादि कृताकृत है ।

न्यूनाधिकप्रमाण भी कुण्ड और मण्डप कर्मोपयोगी होते हैं
या नहीं—

शास्त्रमें कुण्डका प्रमाण होमसंख्याके अनुसार विहित है । उसमें
भी—मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्धे संप्रक्षते । (शारदा०) एकहस्तमितं
कुंडं शतार्धे सम्प्रचक्षते । (शारदा०) यह दो प्रकार विहित है ।
सिद्धान्तशेखरमें—लक्षार्धे त्रिकरं कुंडम् इत्यादिसे प्रकारान्तरविहित
है । इसप्रकार परस्पर विरुद्ध वचनों की व्यवस्था कोटिहोमपद्धतिकार
ने की है—एतत् शीघ्रदाहिघृतादिद्रव्यहोमविषयम् । तिलयवादिस्थूल-
द्रव्यहोमे तु होमसङ्ख्याविशेषाभ्नातमेव कुंडं ग्राह्यम् । घृतादि होम-
द्रव्यमें अल्पपरिमाण और स्थूलद्रव्यमें अधिक परिमाण का कुंड होता
है । यह व्यवस्था विकल्प जहाँ दो वचनका तुल्यबलविरोध हो वहाँ
माना जाता है । ‘तुल्यबलविरोधे विकल्पः’—यह शास्त्रमिद्धान्त है ।
वह विकल्प दो प्रकारका है—व्यवस्थितविकल्प और तुल्यविकल्प ।
जहाँ व्यवस्थापक कोई हो उसकी व्यवस्थित कहते हैं । जहाँ व्यवस्था-
पक न हो उसको तुल्यविकल्प कहते हैं । जैसे-उदिते जहोति, ‘अनु-
दिते जुहोति’ यह दो वाक्य हैं । प्रथमश्रुतिसे सूर्योदयानन्तर अग्निहोत्र
विहित है और द्वितीयश्रुतिसे सूर्योदयात् प्राक् सिद्ध है । ये दोनों
श्रुतियाँ अग्निहोत्र विधायक नहीं हैं । अग्निहोत्र तो—यावज्जीव-

मग्निहोत्रं जुहुयात् - इसीसे सिद्ध है। किन्तु अग्निहोत्र का अनुवाद करके तदञ्जभूत काल विधायक ये श्रुति है इसीलिये इनको गुणविधि कहते हैं। यद्यपि यहाँ विधिवाचक लिङ्गादि नहीं है। तथापि लट्का लिङ्गत्वेन विपरिणाम होता है। इन दोनों श्रुतियों का परस्परविरोध होने पर दोनों तुल्यबल है, अतः विकल्पका आश्रयण होता है। वह भी जिनके सूत्रमें उदितहोम विहित है, उनको उदित होमी होना चाहिये और जिनके सूत्र में अनुदितहोम विहित है उनको अनुदितहोम करना चाहिये। यह व्यस्थित विकल्प है। अतिरात्रे पोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे पोडशिनं गृह्णाति इत्यादि में व्यवस्थापक न होनेसे तुल्यविकल्प है। अतः अतिरात्रप्राग में पोडशिग्रह ग्रहण ऐच्छिक है। प्रकृतमें कुंडके विषय में न्यूनाधिक व्यवस्थित परिमाण प्रतिपादक वाक्योंमें व्यवस्थापक गुरुलघुद्रव्यादि है अतः विकल्प माना जाता है। इस प्रकार यावत्संख्याक होममें यावत्परिमाण कुंड विहित है वहाँ उसमें न्यूनाधिक परिमाणबाला कुंड न्यूनाधिक कुंड कहा जाता है। एतादृश न्यूनाधिक परिमाण कुंडका भी कहीं कहीं उपयोग होता है। न्यूनसंख्योदिते कुंडेऽधिको होमो विधीयते। अनुक्तकुंडो न्यूनस्तु नाधिके शास्यते क्वचित्। (कोटिहोमप०) न्यूनसंख्यावाले कुण्ड में अधिक हवन होता है। अधिक संख्यावाले कुण्ड में न्यूनहवन नहीं होता है। इसीप्रकार अधिक कुण्ड में न्यूनहोम भी कहीं अभिमत है। कोटि-होमपद्धति में-न्यूनसंखेऽपि स्थूलद्रव्यपरिमाणाधिक्यादावधिकसंख्योक्तमपि कुण्ड भवति। अर्थात्परिमाणम्—इति कात्यायनोक्ते। न्यूनसंख्य होम में भी अधिकहोमसंख्यावाला कुण्ड होता है—यह लिखा है। कुण्डरत्नावली में भी आहुति तारतम्यसे कुण्डविस्तार कहकर अन्तमें कहा है। कि कुण्डव्यस्था पृथुसूक्ष्ममानाद् द्रव्यस्थ कार्या सुधिया सुधीभिः। कुण्ड व्यवस्था द्रव्यके स्थूल और सूक्ष्ममानसे अपनी बुद्धिसे विद्वानों को करनी चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि चर्वादिगुरुद्रव्य होम में अधिक प्रमाण भी कुण्डग्राह्य है। शताधेरत्नः स्यात् -

इत्यादि वचनसे शतार्थे शत सहस्रादि हवन में कुण्ड का विधान सिद्ध हुआ। परन्तु शतादि आन्तरालिक संख्याकहोम में कुण्डपरिमाण कितना हो इस शंकाको दूर करने के लिये 'न्यूनसंख्यों दिते' यह वचन है। इसलिये नवशत अष्ठशतादि अनुक्त कुण्डकहोम सहस्रहोमोदित कुण्ड में नहीं करना किन्तु पूर्वकथितशत संख्याकहोमकुण्ड में ही करना यह सिद्ध होता है। इसप्रकार न्यूनसंख्योदिते' यह वचन अनुक्त कुण्डक आन्तरालिक होम में न्यूनकुण्ड का विधायक हुआ। तब यही वचन अधि कुण्ड में गुरुद्रव्यक न्यून होम का निषेध नहीं कर सकता है। क्योंकि दो कार्य का विधान करने से वायभेद दोष होता है। पूर्वार्द्ध से न्यूनकुण्ड में अधिक होमविधान और उत्तरार्द्ध से अधिक कुण्ड में न्यून होम का निषेध। विधानद्वय करने में 'अनुक्त कुण्डों न्यूनस्तु' यह अनुक्त कुण्डस्वरूप जो होमका विशेषण है यह बाधित होता है। कदाचित् कहें कि—'न्यूनाधिकं न कर्तव्यं कुण्ड कुर्याद्विनाशनम् (परशुराम)' इस वचनान्तर के रहते अधिक कुण्ड उपादेय नहीं हो सकता है तो इसका उत्तर यह है कि—यह वचन भी प्रवृत्तार्थ साधक नहीं है किन्तु इस वचन का ही नाधिकाङ्ग लक्षण रहित कुण्ड निषेध में ही तात्पर्य है। इसवचन के पूर्व "आयामखातविस्तारायथातथं तथातथम्" यह वचन है और 'खातेऽधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः।' यह उत्तर वचन है। इसप्रकार पूर्वापरपर्यालोचनया अलक्षण कुण्ड का निषेधक ही परशुराम वचन है अधिक कुण्ड में अल्पाहुति का नहीं यह स्पष्ट है।

कोई विद्वान् 'अनुक्तकुण्डों न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित्' यहाँ क्वचित् शब्द से अधिक कुण्डमात्रसे न्यूनहोमका निषेध करते हैं। परन्तु वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चार हाथके कुण्डमें जिसमें दो दों हाथके चार भुजमान हैं वहाँ पर 'खातं क्षेत्रसमं प्राहुः' इत्यादि शास्त्रसे दो हाथ के खात करने पर कुण्डावकाशरूप क्षेत्रफल आठ हाथ का होता है एवं द्वित्रिहस्तादि कुण्ड में सर्वत्र क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी द्विहस्त त्रिहस्त

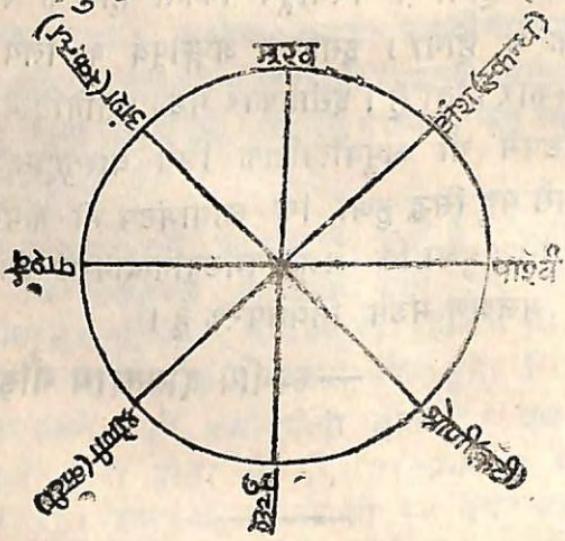
चतुर्हस्त कुंड यही व्यवहार प्रामाणिक करते हैं। विचार करने पर तत्त्वाद्वोम के प्रति ये भी अधिक कुंड हैं तो वच्चित शब्दसे यदि अधिक कुण्डत्वावच्छन्न में न्यूनहोम सामान्य निषेध माना जाय तो इन कुण्डों का भी निषेध हो जायगा। कोटिहोमपद्धति में स्पष्ट कहा है कि—यद्यपि द्विहस्तविहस्तादिकुंडेषु हस्तमात्रमेव खातं युक्तम् अन्यथा क्षेत्रफलाधिक्यात्। तथापि वचनादधिकमपि खातं न दोषाय। आगे चलकर लिखा है—एतेन कुण्डभूतलमेव क्षेत्रफलमितिवदंतः परास्ताः। गर्तस्य न्यूनाधिक्येऽपि भूतले प्रमाणाधिक्यन्यूनत्वाद्यसंभवात्। सिद्धस्य भूतलस्य फलत्वायोगाच्च। साध्यस्त्ववकाशः फलत्वेनाभ्युपगन्तुं युक्तम् न च ज्योतिष्ठोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ सिद्धस्य स्वर्गस्य कथं फलत्वाभ्युपगम इत्यात्र शंकनीयम्। तत्रापि साध्यस्य कर्तृस्वर्गसंबंधस्यैव फलत्वमिति सन्तोष्टव्यम्।

कुंडभूतल ही क्षेत्रफल है यह भी ठीक नहीं है। जिसप्रकार द्वितीयहस्तादि कुंड में क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी न्यूनहोम वचनबलसे होता है। इसीप्रकार चर्वादिगुरुद्रव्यहोम में भी अधिक कुंड ग्रहण शास्त्रकारों को अभिप्रेत है। इससे सिद्ध हुआ कि न्यूनाधिक कुंड भी वचनबलसे कहीं कर्मोपयोगी होता है। एवं न्यूनाधिक मण्डप भी कर्मोपयोगी होता है विशद्वस्तप्रमाणेन मण्डप कूटमेवा (कोटिहोमप४)। लक्षणरहित मण्डप को कूट मण्डप कहते हैं। यह कूटमण्डप स्वलक्षण मण्डपके अभाव में है। सलक्षणमण्डपा संभवे छायामात्रं कर्तव्यम्। तत्र अपूर्वप्रयुक्तत्वाद्वर्मणां यवेष्विव व्रीहिर्धर्माः मण्डप पूजादयोऽप्यत्र भवन्ति (कोटिहोम प०)। अलक्षण मण्डप में भी यत्रों में व्रीहिर्धर्म के सदृश मण्डप पूजादि होते हैं। तात्पर्य यह है कि—दर्शपूर्णमासयागमें पुरोडाश के लिये व्रीहि अभिहित हैं। व्रीहि संस्कारके लिये—व्रीहीन् प्रोक्षति। व्रीहीनवहन्ति। इत्यादि श्रुति है। व्रीहिके अभावमें यह गृहीत होते हैं। वहाँ यत्रों का भी प्रोक्षणादि संसकार हो या नहीं इस संशय में ‘व्रीहीन् प्रोक्षति’ इत्यादि

विधिवाक्यमें यवका ग्रहण नहीं है अतः यवका प्रोक्षणादि संस्कार न हो चाहिये ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ । सिद्धान्त यह है कि—त्रीहि प्रतिनिधियों का भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है । असंस्कृत द्रव्ययाग योग्य नहीं होते हैं और अज्ञकर्म से जनित अपूर्वप्रधान कर्मसाध्य परमापूर्व को उत्पन्न करते हैं, वही परमापूर्व धर्म पुण्य इत्यादिशब्दों से कहा जाता है । यदि अज्ञ जन्य अपूर्व लुप्त कर दिये जायं तो परमापूर्व विकल होगा । परमापूर्व विकल होने से स्वर्गादि इष्ट फलका साधक न होगा । इसलिये अज्ञापूर्व के लिये यवों में भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है । इसीप्रकार मंडपप्रतिनिधित्वेन उपादीय-मान छायामंडपमें भी अपूर्वोत्पत्तिके लिये वास्तुहोम मंडपपूजादि होते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि छायामंडप भी कर्मोपयोगी है । इससे वह भी सिद्ध हुआ कि अलक्षणमंडपनिन्दापरक वचन सलक्षण-मंडपसंभव में अलक्षण मंडप निर्षधपरक हैं ।

—स्वर्गीय दौलतराम गौड़ वेदाचार्य

कुण्डों के बन्नोंने मैं सहायक यज्ञ



कुण्ड निर्माण में आवश्यक बातें

कुण्ड-मण्डप बनाने वाले की परीक्षा आवश्यक—

परशुरामसत से मण्डप और कुण्ड बनानेवाले से सतिसंभवमें निम्न-लिखित बातोंकी जानकारी कर लेनी चाहिये । सत्य बोलनेवाला हो । सदाचारी हो । विवेकसे कार्य करने में अति कुशल हो । स्थिर साहसी हो । कुण्ड मण्डप आदि शास्त्रके तत्वको जानने वाला हो । देवी-देवताओं में श्रद्धा हो । इन्द्रियों में विकार की भावना से परे हो । मैले कपड़े धारण करनेवाला न हो । रोगी न हो । वेकार के आडम्बरों को करनेवाला न हो । बहुत बोलने वाला न हो । किसी अन्य मतों पर कलह करनेवाला न हो ।

मण्डपभूमि विभाग विचार—

तीन हाथ से सात हाथ के मण्डप का विभाग नहीं होता है । आठ हाथ से अठारह हाथ तक तीन भाग करे । बीस हाथ से —अठाइस हाथ तक पाँच भाग करे । तीस हाथ से पचहत्तर हाथ तक सात भाग करे । सौ हाथ मण्डप में दस भाग करे ।

मण्डप में स्तम्भ विचार—

सात हाथ के मण्डपमें चार स्तम्भ लगते हैं । आठ हाथ मण्डप से लेकर अट्ठारह हाथ तक के मण्डप में सोलह स्तंभ लगते हैं । तीस हाथ मण्डप से लेकर पचहत्तर हाथ के मण्डप में चौसठ स्तंभ लगते हैं । सौ हाथ के मण्डप में एकसौ इक्कीस स्तंभ लगते हैं ।

मण्डप भूमि का नाम कथन—

सात हाथ के मण्डप को 'एकभू' कहते हैं । आठ हाथ मण्डप से लेकर अट्ठारहाथ के मण्डप को 'द्विभू' कहते । बीस हाथ से अठाइस हाथ के मण्डपको 'त्रिभू' कहते हैं । तीस हाथ से पचहत्तर हाथ के मण्डप को

‘चतुभू’ कहते हैं। सो हाथ के मण्डप को ‘दशभू’ कहते हैं। उसमें भी मध्यकोष्ठचतुष्टय का एकीकरण से ‘पञ्चभू’ कहा जा सकता है।

अंगुलादि ज्ञान—

आठ परमाणु का—एक त्रसरेणु आठत्रसरेणु का एक रथरेणु—
आठ रथरेणु का—एक बालाग्र आठबालाग्रका—एक लिक्षा आठ लिक्षा
का—एक यूका, आठयूका का—एक यव आठयव का—एक अंगुल,
चीबीस अंगुलका—एक हाथ और पाँच हाथ का—एक पुरुष होता है।

यज्ञीयभूमि का विचार—

अग्निकोण प्लवाभूमि—विद्वेष, मरण और व्याधिको देती है। किसी
के मत से पुत्र, आयु और घन का नाश करती है। दक्षिणप्लवाभूमि
निश्चय ही मृत्युको देती है। नैऋत्यप्लवाभूमि घर का नाश करती है।
पश्चिमप्लवाभूमि घनका नाश करती है। वायुकोणप्लवाभूमि उद्वेगका
करनेवाली होती है। ईशानकोणप्लवाभूमि शीघ्र ही लक्ष्मीको देनेवाली
होती है। पूर्वप्लवाभूमि कार्योंको सिद्ध करती है। उत्तरप्लवाभूमि वर-
दायिनी होती है। पूर्वोत्तरप्लवा भूमि सब कार्यों की सिद्धि करनेवाली
होती है।

परकीयादि भूमिमें मण्डपका विचार—

मण्डप बनाने के लिए अपनी भूमि ही अति उत्तम होती है। पर-
कीय भूमि में स्वामी की आज्ञा बिना मण्डप बनाकर जो कार्य किया
जाता है—वह निष्फल हो जाता है। अपने निजी घरमें मण्डप और कुण्ड
बना सकते हैं। नदीतीरादि में मण्डप और कुण्ड बनाने में परकीयत्व

विशेष—दानमयूखमतसे आठ यव का एक अंगुल उत्तम कहा है।

मध्य-सात यव और अधम ६ यवका एक अंगुल होता है।

कुण्डार्कादी—सूत्रस्याधी विलीयन्ते यूकालिक्षादयस्तथा।

मरीचिकायाम्—यवादून प्रमाणं तु मण्डपादौ न चिन्तयेत्।

दोष नहीं होता है। जहाँ मण्डप बनाना उचित समझते हों—उस भूमि में बारह अँगुल लम्बा एक गढ़ा स्तोदकर (प्रयोगसार)। घर में मण्डप बनावे तो घरकी पूर्वदिशा को ही मण्डपादिमें ग्रहण करे।

यज्ञीयस्थलका विचार—

भस्म निकलनेसे यजमानका नाश होता है। जहाँ यज्ञ हो वहाँ चूँटी आदिके निकलने से उस गर्विका नाश होता है। गिली मिट्टी बालू आदि निकलने से राष्ट्रका नाश होता है। केशके निकलने से स्त्री की मृत्यु होती है। तुषके निकलने से पुत्रकी मृत्यु होती है। कपाल के निकलने से ऋत्विक् को भय होता है। ईटोंके ढुकड़े निकलने से बन्धु बान्धवों से वियोग होता है। वृणके निकलने से कर्म का क्षय होता है। आद्रसिकता निकलनेसे विद्याभय होता है।

दिवसाधन विचार अत्यावश्यक—

दिवसाधन बिना कुण्डों को बनाने से मृत्यु होती है। कुण्डदर्पण। दिशाओंकी जानकारी में मूर्ख हो तो कुलका नाश होता है—यहवृद्ध-नारदका मत है। दिशाके अज्ञानमें धन का नाश होता है, (कुरुते दिङ्मूढ-मर्यक्षयम्) कुण्डप्रदीप दिशाओंकी भ्रान्ति-भ्रान्तिमान होता है—विधान-माला। पर्वतपर, नदी के किनारे पर विशेषकर घर आदि में तथा रुद्राय-तन भूमि में दिक् साधन नहीं होता है।

मण्डपारम्भ में विचार—

तीन तरह के अधम, मध्यम और उत्तम मण्डपमें ऋत्विक्, सदस्य तथा समाज के लोग सौकर्यतासे बैठ जाय ऐसा मण्डप बनावे—विद्याणंव,

विशेष—‘प्रारभात्पूर्वतः कुर्यात्खननं कर्मसिद्धये ।

जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा ॥

पुनः संपूरयेत् खातं तत्र कर्म समारभेत् ।

गृहे कुण्डे हस्तमितं खात्वा श्वभ्रं प्रपूनितम् ॥

(कृण्डमरीचिकायाम्)

तन्त्र। मण्डपके निर्माण के समय में 'धूम' आदि निकलनेकी व्यवस्था-का विवार अवश्य करे—कुण्डनारदपञ्चरात्र। पवित्र—धुद्ध और चौकोर भूमिमें मण्डप बनाना चाहिये।

कुण्डों में नाभि विचार—

नाभि के न रहने से बन्धुओं की मृत्यु होती है। नाभि के नाप को कमी और अधिकता होनेपर स्वयं यजमान का नाश होता है। नाभि-हीने स्थाननाश—विधानमाला मत से नाभि के न रहने से स्थान का नाश होता है। नाभि कुण्ड के उदर में रहती है। नाभि अष्टदला कारया कुण्ड के अनुरूप होती है।

मेखला विचार—

मेखलाओं के छिन्न-भिन्न होने पर यजमान का मरण होता है। 'मरणं' हीनमेखले। 'विधानमाला'। मेखला के अधिक या न्यूनाधिक में व्यावर उत्पन्न होती है और घन का नाश होता है। मेखला कुण्ड के आकार की बनानी चाहिये। 'मेरुतन्त्रमत से' मेखलाके जर्जर तथा शृङ्गार हीनता पर यजमान का नाश करती है—

शृङ्गार रहितं यच्च कुण्डं जर्जरमेखलम् ।

यजमानविनाशाय प्रोद्वातः स्फुटिते भवेत् ॥

हारीतः—मरणं यजमानस्य जायते छिन्न-मेखले ।

शोकस्तु मेखलोद्ध्राये मानाधिकतरो भवेत् ॥

एक, दो, तीन, नी, सात और दस मेखला का हवन कुण्ड में विधान है। शक्तिसंगमतन्त्र। दो, चार, तीन और एक मेखला का विधान है। ईश्वर संहिता और बृहदब्रह्मसंहिता। एकमेखला का विधान संक्षेप हवन कर्ज में है। जयाख्यसंहिता। तीन मेखला का विधान है। बड़े हवन में हैं। बृहन्नालतन्त्र। दो मेखला शूद्रों के लिए और एक मेखला संकर जातियों के लिये है। मेरुतन्त्र। पाँच मेखला पक्ष

में मनोनुकूल रंग लगावे । एक मेखला पक्ष में—मेखला के नीचे छिद्र होता है । दो मेखला पक्ष में—दूसरी मेखला में छिद्र होती है । तीन-मेखला पक्षमें मध्य मेखला में छिद्र होता है और पाँच मेखला में चौथी मेखला में छिद्र होता है । ('कोटिहोमपद्धति')

कुण्ड-विचार—

कुण्ड में कण्ठ और ओठ न रहनेसे पुत्रों का नाश होता है—वह एक मत है । कुण्ड में कण्ठन रखने में किसी की भी मृत्यु होती है । यह भी एक होम है । कण्ड में कण्ठ न रहनेसे स्त्रीका नाश होता है—यह भी एक मत है । कुण्ड में कंठ न रखने से किसी की भी मृत्यु होती है । यह भी एक मत है । कंठाधिक्ये भवेनाशः—इस हारीत वचन से कण्ठाधिक्य में भी नाश होता है ।

बहिरेकांगलो कंठो द्वयज्ञलः कश्चिदागमः ।

तेनाद्यः प्रथम पक्ष एवं श्रेयान् बहुसंमतत्वात् ।

'सांप्रदायिकास्तु प्रथम पक्षमेव अन्यन्ते बहुतन्वसंमतत्वाद्'

[शारदातिलके]

भोक्तुभुक्तः कंठतोऽधः सुखाय चोर्ध्वं तस्मात्सेव दुखं प्रयच्छेत् ।

होम्यं तद्वक्त्कंठतोऽधः सुखाय तस्माद्वृद्धं दुःखदं स्यात्प्रवन्हे ।

कंठके नीचे तक कुण्डमें शाकत्य की आहुती सुख देनेवाली है और कंठ के ऊपर जो आहुतियाँ कुण्ड में पड़ती हैं । वह दुःख को देनेवाली होती हैं ।

मण्डपाच्छादन विचार—

जनताकी सुविधाके लिए बाँस आदि द्वारा निर्मित जाली से दरवाजों को छोड़कर मण्डप को ढकना चाहिये^१ । कुते, बिल्ली, मूसा, गो,

विशेष—देखिये—ज्ञानवर्ण, मेरुतन्त्र, नित्यषोडशिकार्णव, शौनकपरिषिष्ठ, कोटि-होम, जयाख्यसंहिता, राजधर्मकीस्तुभ, वृहद्ब्रह्मसंहिता ।

बकरी, बेल, पागल, शत्रु, भयंकर रोगी, विषदेनेवाला, अग्नि लगाने वाला, लड़ाई करनेवाला, नास्तिक दंभी, वेश्यागामी आदि का मण्डप में प्रवेश न हो—ऐसा मण्डपाच्छादन करे। मण्डप की हर समय रक्षा होनी चाहिये। रात को आदमी मण्डप के चारों तरफ धूमता रहे जिससे चोर आदि द्वारा मण्डप की सामग्री तथा मूर्ति की चोरी का भय न हो।

आचार्य कुण्ड निर्णय—

नवग्रहके नी कुण्ड पक्ष में सूर्य के प्रधान हो जाने से आचार्यकुण्ड मध्य का ही होता है। इन कुण्डों की योनिका स्थान विभक्त। द्विमुखमें मध्य गत दो कुण्डों में दक्षिणवाला कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। इनकी योनि पूर्व होती है। शतमुख में विशेष वचन से नैऋत्यकोण का ही कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। इन कुण्डोंकी योनि पूर्व ही होती है। दक्षमुखमें नैऋत्यकोण का ही कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। इनकी योनि पूर्वमें होती है। विष्णु, रूद्र आदिकी प्रतिष्ठा मात्रमें नौ कण्डों पक्षमें ईशानकोण और पूर्वादिशाके मध्य वाला कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। पञ्चकुण्डी पक्षमें तो ईशानकोण का ही आचार्य कुण्ड होता है। रामवाजपेयी ने पञ्चकुण्डी पक्षमें भी ईशान और पूर्वादिशा का कुण्ड आचार्यकुण्ड माना है, पर उसमें कोई मूल नहीं मिलता है। ये कुण्ड-चतुरस्त्र योनि, अर्धचंद्र, त्रिकोण, वृत आदि भेदसे ही बनते हैं या सब वृत चतुरस्त्र, या पदम बन सकते हैं। यदि सब एक प्रकार के बने तो भी 'कुण्ड-त्रयी दक्षिण योनिः' यह वचन वहाँ भी लगेगा। ऐसा मालूम होता है। प्रतिष्ठा में जहाँ एक कुण्ड का विधान वहाँ ईशान, पूर्व, पश्चिम, उत्तर आदि का कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। प्रतिष्ठा में यदि चारकुण्ड पक्ष को स्वीकार करेंगे तो संभवतः पूर्वादिशा का कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। प्रतिष्ठा में सातकुण्ड पक्षको ग्रहण करने पर अचार्यकुण्ड पूर्वादिशाका ही निर्विवाद होगा।

त्रयोदशात्र कुण्डानि परितः कारयेद् बुधः। उत्तरलक्षणयुक्तानि प्रधानं

त्वग्निकोण के अत्र मण्डपे वेद्या परितः दिक्षुद्वे विदिक्षु चैकैकम् प्रधानं च त्रयोदश कुण्डानि । आदी पूर्वादि चतुर्दिक्षु एकैकं कुण्डमकोण चैकं प्रधानकुण्डम् पञ्चकुण्डेभ्यो बहिः परितः—अष्टादिक्षु एकैकं कुण्डम् एवं त्रयोदश कुण्डानि मनु—अग्निकोणे एकस्य कुंडस्य विद्यमानत्वात् कथंमत्र ब्रधानकुण्डकार्यमाह—अग्निकोणगात् कुण्डात् हस्तमात्रमनरतः व्यवस्थाते अग्निकोण एव साक्षात् मुख्यं प्रधानकुण्ड कारयेत् । [तंत्रसार]

जहाँ हवन प्रधान होगा वहाँ पंचकुण्डी और पंचकुण्डीपक्ष में मध्यका ही कुण्ड आचार्य शास्त्रीय मतसे होता है । वयोंकि मत्स्यपुराण शारदा तिलक आदि 'आचार्यकुण्ड मध्ये स्यात् गौरीपतिमहेन्द्रयोः' इत्यादि पञ्च दीक्षा और प्रतिष्ठा आदि को लेकर ही लिखा है । यह बात वहाँके प्रकरण को देखने से निर्णीत हो जाती है ।

कुण्ड विषयक विचार—

कुण्ड को परिमाण से हीन बनाने पर व्याधि होती है । कुण्ड की नाप से अधिक बनानेपर शत्रु बढ़ते हैं । कुण्ड निर्माण करनेपर पत्थर निकले तो अपमृत्यु होती है । 'विधानमालामत' से अनेक प्रकार का भय, धन तथा आयुकी हानि होती है । कुण्ड बनानेपर हड्डो, केश और अँगार निकले तो धन का नाश होता है । अँगारों के टुकड़े निकलने पर रोग तथा पाषाण के टुकड़ों को देखनेपर सौख्य होता है । 'विधानमाला' । शब्द निकले तो कुल का नाश होता है । कुण्ड के बनाते समय राख निकले तो भय उत्पन्न होता है । कुण्ड के निर्माण समय में तुष निकले तो दारद्री होता है । कुण्ड में नाप से अधिक खात होने पर धननाश होता है । कुण्ड के टेढ़ापन होने से दुःख होता है । कुण्डके न्यून या अधिक होने से यजमान का स्वयं नाश होता है । कुण्डादक के अधिक या न्यून होने पर यज्ञाचार्य का मरण होता है । कुण्ड के नापमें कमी रखने पर दरिद्रता होती है । विशेषज्ञों द्वारा कुण्ड न बनानेपर कुण्ड और मण्डपादि निष्फल होता है । कुण्ड आयु, कलन्त्र पुत्र और सुख देनेवाला कहा गया है, कुण्ड को खोदते समय सर्प, वृष्णिक देखने में रोग, मृत्यु तथा भय प्राप्त होता

है। 'विधानमाला'। अंगार में स्वामी का नाश, खपर में स्त्री और घनक्षय, भरमसे-सन्ततिविच्छेद, सिकताओं में घनक्षय, गजास्थि में स्वामी का मरण, तुरगास्थि में घन मनुष्यों का नाश और पश्वास्थि में पशुओं का मरण होता है। कुण्ड के विस्तार रहित में यजमान का जीवन अल्प समय का हो जाता है। कुण्ड के टेढ़ेपन में और मानहीन में जठराश्चिन मन्द हो जाती है। कुण्ड के आचिक्य में सन्ताप होता है। कुण्ड के बिना हवन करने से ऋत्विजों द्वारा मन्त्रों की सिद्धि देनेवाला नहीं होता है। अतः सौत्र या जंगम स्थिर कुण्ड करे। 'ज्यारब्यसंहिता'। जिस ग्रन्थ से चतुरस्त्र कुण्ड बनावे उसी ग्रन्थ से अन्य पद्म आदि कुण्ड बनावें, ऐसा कोई नियम या विधान नहीं मिलता है।

चतुरस्त्रादि कुण्डसे कामनापरक फल—

चतुरस्त्रकुण्ड-शान्ति, विजय, लक्ष्मी, सिद्धि और सम्पूर्ण कार्यों को करने-वाला है। मुमुक्षार्थी वैष्णवों के लिए चतुरस्त्र कुण्ड का विधान है जो विष्णु-यागाद्यज्ञोंमें आचाय कुण्ड मंडप के मध्य में प्रधान वेदी तथा दिशाओंमें कुण्डोंको बनाकर यज्ञकराते हैं। उनका यह मध्य में मत अशास्त्रीय ही होती है। गृहवास्तु और प्रसादवास्तु में वास्तुवेदी ईशानकोण में होती है, उसके दक्षिण ग्रहवेदी होती है। महारुद्रादि यज्ञोंमें प्रधानवेदी ईशानकोण में उसके दक्षिण ग्रहवेदी होती है। विष्णुयागादि में प्रधान-वेदी दक्षिणदिशामें होती है। साधारण मत से पूर्वमें भी प्राप्त होती है। विष्णु आदि प्रतिष्ठामें प्रधानवेदी मध्यम बनती है। इतमुख, द्विमुख, और एकमुख में प्रधानवेदी पूर्वादिशामें बनती है। कोटि होमात्मक विष्णु-यागमें ईशानकोण में ग्रहवेदी उसके दक्षिण प्रधानवेदी होती है।

विविध प्रकार के कुण्डों का निर्माण—

चतुरस्र कुण्ड बनाने का प्रकार—

चतुरस्र कुण्ड

द्विधनव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूक्ष्मं शङ्कौ पश्चिमे पूर्वमेऽपि ।
दत्त्वा कर्त्तेत्कोणयोः पाशतुर्ये स्यादेवं वा वेदकोणं समानम् ॥

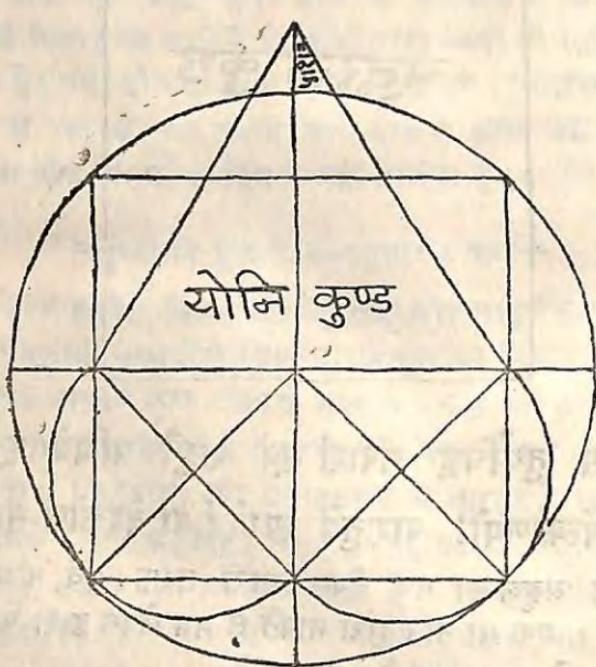
चौबीस अङ्गुल का गज लेकर जारों तरफ (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर) एक सा नाप द्वारा नापने से मय लेवन द्वारा चतुरस्र कुण्ड एक हाथ का तैयार होता है ।

योनिकुण्ड बनाने का प्रकार—

क्षेत्रे जिनांशे पुरतः शरांशान् सम्बर्ध्यं च रवीयरदांशमुक्तान् ।
कण्ठाङ्गिमानेन लिखेन्दुखण्डे प्रत्यक्षं पुरोऽङ्गादृगुणतो भगाभम् ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र में दक्षिणोत्तर आधे पर एक लम्बी रेखा दे । तदनन्तर पश्चिम भाग के आधे भाग का दो

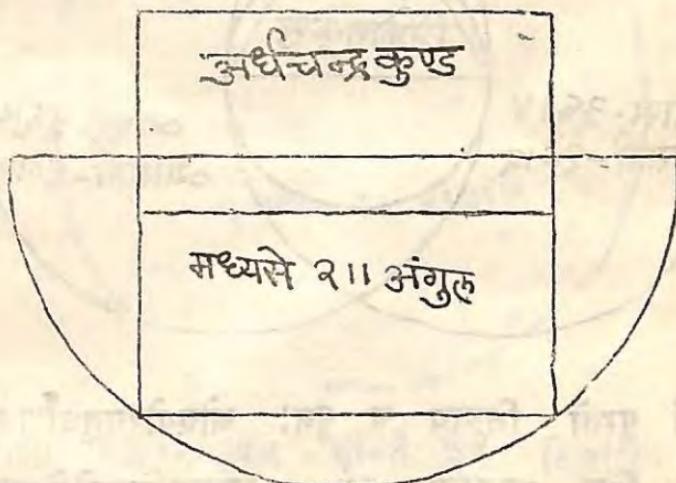
हिस्सा पूर्व और पश्चिम की तरफ करे। फिर उसके आधे में अर्थात् कोने से एक रेखा दे जो टेढ़ी दूसरी कोने में जाकर मिले। इस तरह फिर दूसरे कोने से रेखा दे। इसी तरह दूसरे कोने में दे। इस प्रकार दोनों आघों में चार रेखा टेढ़ी होगी। फिर उस पूर्व निर्मित चतुरस्त के ठीक पूर्ब दिशा की तरफ के मध्य से पाँच अङ्गुल, एक यव और दो यूका



बढ़ा दें। फिर चतुरस्त के किये हुए ठीक मध्य से अर्थात् दक्षिण दिशा से सटी एक रेखा टेढ़ी दे जो पूर्व के ठीक मध्य में बढ़ी हुई पाँच अङ्गुल एक यव और यूका वाली रेखा के ऊपरी हिस्से में मिल जाय। इसी तरह उत्तर दिशा से एक रेखा दे। अर्थात्—दक्षिणोत्तर रेखा बढ़े हुए पाँच अङ्गुल एक यव और दो यूका की रेखा में मिला दे। तदनन्तर नीचे प्रकाल को दक्षिण की तरफ और उत्तर की तरफ बने हुए दोनों हिस्सों के

ठीक मध्य से अर्थात्—अलग अलग घुमाकर पश्चिम भाग के ठीक मध्य की तरफ मिला दे। इसी तरह उत्तर की तरफ से प्रकाल द्वारा रेखा पश्चिम दिशा के ठीक मध्य में मिलाने से योनि कुण्ड तैयार हो जाता है।

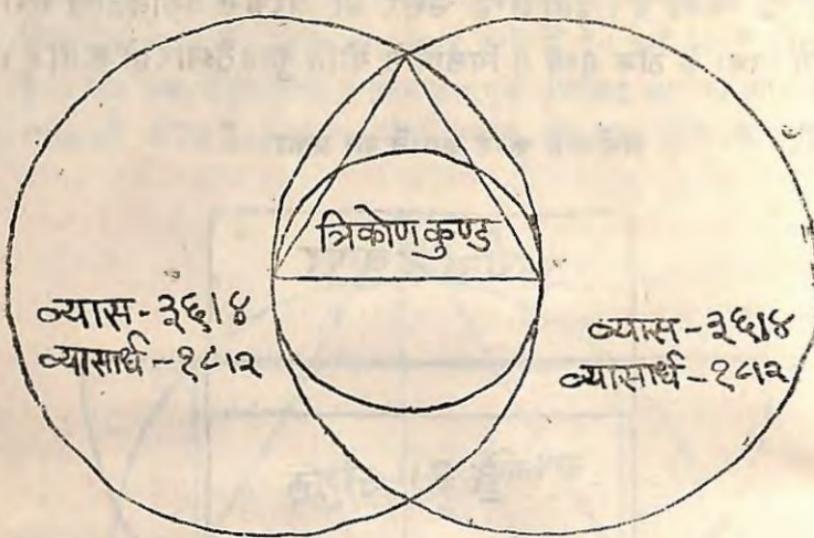
अर्धचन्द्र कुण्ड बनाने का प्रकार—



स्वशतांयुतेषु भागदीनस्वधरिश्रीमितकर्टेन मध्यात् ।
कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां चिदधात्विन्दुदलस्य साधुसिद्धैः ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के पूर्व दिशा से अढाई अङ्गुल हटाकर (पञ्चकुण्डी पक्ष में उत्तर दिशा के ठीक मध्य की तरफ से अढाई अङ्गुल हटाकर) दक्षिणोत्तर एक रेखा लम्बी दे। उसी रेखा के मध्य से उन्नीस अङ्गुल' एक यव, एक यूका, पाच लिक्षा और सात बालाग्र (१९ अङ्गुल, १ यव, १ यूका, ५ लिक्षा, ७ बालाग्र) प्रकाल से नाप कर अर्थात् साढ़े उन्नीस अङ्गुल को प्रकाल से नाप कर टेही रेखा देने से अर्धचन्द्र कुण्ड बनता है।

त्रिकोण कुण्ड बनाने का प्रकार—



वहन्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोण्योश्यतुर्थांशकम् ।
चिह्नेषु त्रिषु स्थिरदानत इदं स्यात्यस्तिकष्टोज्ञितम् ॥

चीबीस अङ्गुल के चतुरस्र के बाहर पञ्चम की तरफ से वायव्यकोण और नैऋत्यकोण की तरफ छः छः अङ्गुल और बढ़ा दे । अर्थात् छः अङ्गुल वायव्यकोण में और छः अङ्गुल नैऋत्यकोण में बढ़ा दें । तदनन्तर निर्मित उस चतुरस्र के ठीक पूर्वदिशा के मध्य से आठ अङ्गुल लम्बी रेखा सीधी पूर्वदिशा की तरफ बढ़ा दे । फिर वायव्यकोण में बढ़ो हुई रेखा के अन्तिम हिस्से से एक रेखा टेढ़ी दे, जो पूर्वदिशा में बढ़ो हुई रेखा में मिले । उसीप्रकार नैऋत्यकोण से रेखा देने से त्रिकोण कुण्ड तैयार होता है ।

वृत्तकुण्ड बनाने का प्रकार

वृत्त कुण्ड

वृत्तार्थ- १३।४।२।५

विश्वांशैः स्वजिनांशकेन सहितै चेत्रे जिनांशे कृते ।
व्यासार्थेन मितेन मण्डलमिदं स्याद् वृत्तसंज्ञं शुभम् ॥
चीबीस अङ्गुल के चतुरस्स के ठीक मध्य से साढ़े तेरह अंगुल (तेरह
अङ्गुल, चार यव, दो यूका, पाँच लिक्षा और तीन बालाघ) का प्रकाल
लेकर गोलाकार धुमाने से वृत्तकुण्ड का निर्माण हो जाता है ।

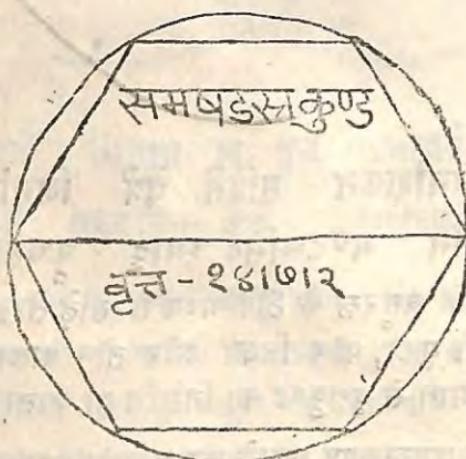
विषम षड्स्त्रकुण्ड बनाने का सरल प्रकार—

मत्केदेत्र जिनांशैर्घृतमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तैः,
व्यासाद्वर्धान्मण्डले तन्मितघृतगुणकृ कक्टे चेन्दुदिक्तः ।
षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमोकन्तु हित्वा नाशै
सन्ध्यक्षु दोषामपि च वृतिकृतर्नेत्ररम्यं षड्स्त्रम् ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ऊपर अठारह अंगुल और दो यव का एक गोलाकर वृत्त बनाकर उस वृत्त में छः निशान वरावर-वरावर के लगा दे । तदनन्तर उन निशानों पर रेखा देने से विषम षड्स्र कुण्ड बन जायगा ।

तात्पर्य यह है कि—एक रेखा टेढ़ी उत्तर दिशा से पूर्वदिशा के समीप दक्षांस में मिला दे । फिर एक टेढ़ी रेखा उत्तर दिशा की पहली रेखा समीप सटी से पश्चिम दिशा के समीप पुच्छ में मिला दे । फिर दक्षिण से एक रेखा टेढ़ी पूर्वदिशा के समीप मुख में मिला दे । फिर एक रेखा टेढ़ी दक्षिण दिशा से पश्चिम दिशा के समीप वाम श्रोणी में मिला देने से विषम षड्स्र कुण्ड तैयार हो जाता है ।

समष्टिष्ठ कुण्ड बनाने का प्रकार—



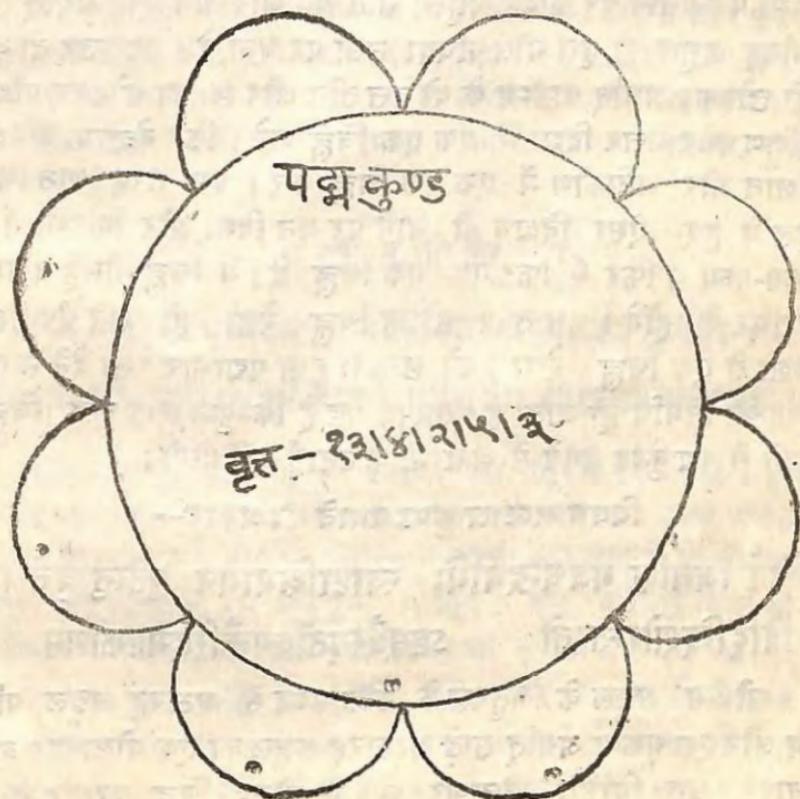
अथवा जिनमत्तकुण्डमानत्तिथिभागैः स्वस्त्रभूपभागहीनैः ।
मितकर्कटोदभवे तु वृते विधुदिक्तः समष्टिष्ठुजैः षड्स्त्रम् ॥

चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ऊपर चौदह अङ्गुल, सात यव और यूका का एक गोलाकार वृत्त बना दे । तदनन्तर

उस नृत्त में बराबर बराबर के छः चिह्न कर देने से समष्टिकुण्ड बन जाता है।

स्पष्टी करण यह है—उत्तर दिशा से टेढ़ी रेखा मुख पर मिला दे, मुख से एक रेखा दक्षांस में मिला दे। दक्षांस से एक रेखा दक्षिण दिशा में दे। दक्षिण दिशा से एक रेखा टेढ़ी पुच्छ में दे। पुच्छ से एक रेखा वामश्रोणी में दे। वामश्रोणी से एक रेखा और दिशा में मिला दे।

पद्मकुण्ड बनाने का प्रकार—



अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके यत्रादिमं कर्णिका युग्मे-
पोडशकेशराणि चरभे स्वाष्ट्रिभागोनिते ।
भक्ते पोडशधा शरान्तरधृते स्युः कर्कटेऽष्टौ छदाः,

सर्वास्तान्त्वनकर्णिकां त्यज निजायामोच्चकां स्यात्कजम् ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ठीक मध्य से एक गोलाकर प्रकाल द्वारा तीन अङ्गुल का वृत्त बनावे । तदनन्तर छः अङ्गुल का गोलाकार दूसरा वृत्त उसी के ऊपर बनावे । फिर नव अङ्गुल का वृत्त गोलाकार तीसरा और बारह अङ्गुल का गोलाकार वृत्त चतुर्थ उसी पर बनाने पर चौदह अङ्गुल, सात यव और तीन यूका अर्थात् साढ़े चौदह अङ्गुल का वृत्त गोल पाँचवा उसी पर बना दे । तदनन्तर दो वृत्त को छोड़कर अर्थात् प्रारम्भ के दो वृत्त तीन और छः का छोड़कर पश्चिम दक्षिण और उत्तर दिशा में एक एक चिह्न करे । फिर नैऋत्य, वायव्य, ईशान और अभिकोण में एक एक चिह्न करे । इस तरह आठ चिह्न वृत्त में हुए—ऐसा निश्चय हो जाने पर उन दिशा और विदिशाओं के मध्य-मध्य में फिर में फिर एक एक चिह्न दे । ये चिह्न सोलह बराबर बराबर के होंगे । इस तरह सोलह चिह्न (रेखा) हो जाने पर उत्तर दिशा से एक चिह्न (रेखा) को छोड़ता हुआ पद्माकार रेखा देने से पद्म कुण्ड का निर्माण हो जाता है । तात्पर्य यह है कि—कुल आठ रेखा (चिह्न) छूटने से पद्म कुण्ड बनने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी ।

विषष अष्टाम कुण्ड बनाने का प्रकार—

देत्रे जिनांशे गजचन्द्रभागैः स्वाष्टाक्षिभागेन युतैस्तु वृत्ते ।

विदिग्दिशोरन्तरतो इष्टस्त्रैस्तुतीययुक्तैरिदमष्टकोणम् ॥

चौबीस अङ्गुल के चतुरस्र के ठीक मध्य से अठारह अङ्गुल, पाँच यव और एक यूकवा अर्थात् साढ़े अट्ठारह अङ्गुल का एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस निमित गोलाकर वृत्त में सोलह चिह्न बराबर करे ।

तदनन्तर दिशा और विदिशा के मध्य की रेखा से (अर्थात् दिशाओं की और विदिशाओं की रेखाओं को छोड़कर) बनाने से विषम अष्टास कुण्ड बन जाता है ।

तात्पर्य यह है कि—पूर्वदिशा के सभीप दक्षांस अंश से एक रेखा सीधी पश्चिम की तरफ पुच्छ अंश में मिला दे । फिर पूर्वदिशा और ईशान के मध्य अर्थात् पूर्वदिशा के सभीप मुख अंश से एक रेखा पश्चिम दिशा के सभीप वामश्रोणी में मिला दे । उत्तर के वामांस अंश से एक रेखा सीधी दक्षिण दिशा के दक्षपार्श्व में मिला दे । फिर वामपार्श्व से एक रेखा सीधी दक्षिण दिशा के सभीप दक्षश्रोणी में मिला दे । पूर्वस्थित दक्षांस से एक टेढ़ी रेखा वामपार्श्व में मिला दे । फिर ईशान और पूर्वके मध्य मुख से एक रेखा टेढ़ी दक्षश्रोणी में मिला दे । पश्चिम दिशा स्थित पुच्छ से एक रेखा टेढ़ी वामांस अंश में मिला दे । और वामश्रोणी से एक रेखा टेढ़ी दक्ष पार्श्व में मिला देने से विषम अष्टास कुण्ड बन जाता है ।

सब अष्टास कुण्ड बनाने का प्रकार ~

मध्ये गुणे वेदयमैविभक्ते शक्निजर्ष्यविवलवैन युक्तैः ।

वृत्ते कृते दिग्विदिशान्तराले गजैर्भुजैः स्यादथवाष्टकोणम् ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्त बनाकर उस चतुरस्त पर चौदह अङ्गुल, दो यव और तीन युक्ता का गोलाकाश एक वृत्त बनाकर उसमें बराबर बराबर के आठ चिह्न कर दें । यह ध्यान रखना आवश्यक है कि—ये चिह्न दिशा और विदिशा में नहीं होने चाहिये । यदि ये चिह्न दिशा और विदिशा में पड़े तो कुण्ड निर्माण में विघ्न आ सकता है । एक रेखा टेढ़ी (क) उसका प्रकार यह है—मुख से प्रारम्भ कर वामांस में मिलावे ; (ख) वामांस से सीधी रेखा प्रारम्भ कर वामपार्श्व में मिला दे । (ग) वामपार्श्व से एक टेढ़ी रेखा प्रारम्भ कर वामश्रोणी में मिला दे । (घ)

वाम श्रोणी से एक सीधी रेखा पुच्छ में मिला दे । (ड) पुच्छ से एक टेढ़ी रेखा दक्षश्रोणी में मिला दे । (च) दक्षश्रोणी से एक सीधी रेखा दक्ष पाइवं में मिला दे । (छ) दक्ष पाइवं से एक टेढ़ी रेखा दक्षांस में मिला दे (ज) दक्षांस से एक सीधी रेखा सीधी मुख में मिला दे । इस तरह आठ चिह्न वाला सम अष्टास कुण्ड तैयार हो जायगा ।

नव कुण्डों पर कोटिहोमपद्धति का भत
ननु एतानि शारदातिलके वेदमुक्तवा प्रागादिदिक्षु दीक्षाङ्गत्वेनोक्तानि ।

अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात् ।
चतुरसं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यसं सुवर्तुलम् ।
पडसं पङ्कजाकारमष्टासं तानि नामसः ॥ इति ।
तत् एतेषामेय सर्वसिद्धिकरं कण्डं चतुरसमित्यादिना क्रमेण फलानि
श्रुतानि । तेनाङ्गभूतानामेव तैषां कुण्डानामेकस्य तूभयत्वे संयोगपृथ-
कत्वमितिन्यायेन फलार्थत्वमपोत्थेव सति तत्र दीक्षाप्रकरणोक्तानामेषां
काम्यानां कथमत्र प्राप्तिः । यदा हि विकृतावधि प्राकृतः काम्यो गुणो न
गच्छतीतिन्यायस्तत्राविकृतिभूतेऽत्र सुतरामप्राप्तिः । किञ्च—वेदेरत्रा-
सत्वात्प्रागादिदिक्षु—उक्तान्यत्र कथं प्राप्नुयुः । कथञ्चित्प्राप्तो त्वष्ट्रकुण्डी
प्राप्नुयात् ।

अत्र ब्रूमः

शारदायां मण्डपं वेदि चोक्त्वा,
दीक्षाङ्गभूतानि कुण्डान्युक्तानि ।
तदेतत्सर्वसाधारणं न
तु दीक्षामात्रविषयम् ।

तदग्रे—अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि' इति दीक्षोपक्रमेण । प्राक् तत् प्रकरणाभावात् । होमादेश्चानुपस्थितत्वात् । एवं सति क्रियाविशेषानुपस्थितौ किमाश्रितानां कुण्डानां तत्तत्फलसाधनता बोधयेत । वाक्येनैव दीक्षाद्याश्रयदाने वाक्यभेदापात्तः प्रकृतकुण्डामासुपस्थितध्वात्तदाश्रितानां चतुरस्त्वादीनां फलसम्बन्धे उच्चमानेऽप्ति कुण्डानामव्यापररूपाणामाश्रयत्वोयोर्यत्वात्तदोग्याश्र क्रियाया अनुपस्थितत्वात्मागुक्तदोषानन्ति-वृत्तिः । दीक्षादीनामत्रानुपस्थितौ व्यमवत्य कुण्डमण्डपसम्बन्धे इति चेत् । तत्तत्वकरणस्यवाक्यैरिति ब्रूमा । दीक्षातुलापुरुषदिविकरणे हि मण्डपाष्टकुण्ड्याद्यज्ञत्वेन श्रुतम् । तत्पकारस्त्वयमनारभ्यादीतः सर्व-साधारणः पलाशत्वमिवेष्ट्याग्निहोत्रादिप्रकृतिभावानापन्नहोम-साधनीभूतजुह्वाम् । एतेनात्राप्यष्टकुण्डीप्राप्नुयादिप्रयोगपास्तम् । तदज्ञ-वोधकप्राकरणकवाक्याभावात् ।

न च दीक्षाया एव तत्र वक्ष्यमाणत्वात्तन्मात्रविषयत्वमस्य न तु साधारणमितिवाच्यम् । साधारणस्यैव स्वयं वक्ष्यमाणदीक्षार्थत्वेनात्र संग्रहमात्रातन्मात्रविषयत्वे मानाभावात् । अत एव हेमाद्र्यादिभिरेतान्येव वाक्यानि तुलापुरुषाद्यज्ञाष्टकुण्डीप्रदर्शनार्थमुदाहृतानि । तस्मात्प्रकरणाभावादाश्रयाभावेन गुणफलसम्बन्धासंभवात् । तुलापुरुषादावष्टकुण्ड्या अज्ञत्वमेव न तूभ्यार्थत्वम् । तेन सर्वसिद्धिकरं कुण्डमित्यादि सर्वकर्मसाधारणेनैव व्याख्येयम् । सर्वसिद्धिकर कर्मणि चतुरस कुण्डमिति ।

अत एवाग्रे स्पष्टमुक्त चतुर्लं शान्तिकर्मणीतिविज्ञानलिते च । अभिचारोपशान्त्यर्थे हीमे इति । कामिके च शान्तिके पौष्टिके इति । सर्वसिद्धिकरं कुण्डमित्यादिसामानाविकरणं च प्रधानद्वारोपपादनोयम् । यथा यो वृष्टिकाम इत्यादि वृष्ट्याद्यर्थसोभरे एव हीषिति वृष्टिकामाय निघनं कुथदित्यादिना वृष्टिकामाय यत्सोभरं तत्र हीषिति विशेषविचिर्भवति । एवमिहापि ।

विशिष्टोद्देशेऽपि न वाक्यभेदः । उद्देश्यापर्यवसानात् अन्यथा ब्रह्म कापि चतुरस्त्रादिविकल्प प्रसंगादित्यादिविस्तरभयान्नेहोच्यते । तस्मादेतैर्वाक्यैः साधारण्येन तत्तत्कलविशेषार्थं होमादी कुण्डविशेषविधीयन्ते-इत्ययुतहोमादी शान्तिकत्वादिरूपेणानुष्टीयमानेऽस्त्येषां कुण्डानां प्राप्तिरितिसिद्धम् ।

तत्र त्वेतावान् विशेषः । तुलापुरुषादेरपि शान्त्याद्यर्थत्वेन तत्र प्राप्तनु-वन्त्येतानि कुण्डानि दिग्विशेषेभ्वेव भवन्ति । ऐन्द्रचां स्तंभे चतुःकोण-मित्यादिकामिकादिवाक्यैस्तंभाद्यर्थकर्मसु प्राप्तचतुःकोणादिकुण्डेषु वेदितः पूर्वादिनियमात्प्राप्तुवन्ति ।

अयुतहोमादी तु मण्डपमध्यभाग एव भवन्ति । तस्यैव कुण्डदेशत्व-साधनादित्यलम् ।

तुलापुरुषान्नातस्यापि मण्डपस्यप्राप्तिरत्रौपपादिता । तत्र तुला-रोहणादेः प्रधानवेद्यां कर्तव्यत्वेन वेदैः प्रधानदेशत्वात्स्याश्च मध्यकार्य-त्वोक्त्या मण्डपमध्यदेशस्य प्रधानदेशत्वं गम्यते । एवं चात्र तस्मिन् मण्डपे प्रप्ते मध्देशस्य प्रधानदेशत्वमवगतं न त्यक्तुं नायथम् । अत्र च प्रधानहोमोऽयुतहोमादिसमाख्यावशात् । तेनापि मण्डपमध्यभागे कुण्डम् ।

किञ्च भविष्योत्तरे—अयुतलक्ष्महोमाधुवत्वा कोटिहोमं वदन् मण्डप-मध्यभागे कुण्डभाह—मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्यात् विचक्षणः । अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च ॥

तत्र तत्र विशेषविधिबलादेव भविष्यतीति वाच्यम् । लक्ष्महोमादेव कुण्डस्य प्राप्तत्वात्तावन्न विधेयं येन विशिष्टविविः स्यात् । एवं सति तदनुवादेन मध्यदेशविधानेऽष्टहस्तप्रमाणविधाने च वाक्यभेदः स्यात् । अतोऽस्मदुक्तमार्गेण मध्यदेशप्रप्तकुण्डानुवादेन तत्प्रमाणान्तरविधिर्भवात् । विकृतिगतानुवादेन च प्रकृतावनवगतविशेषसिद्धिन्ययिया । यथा सत्रेऽवित्वाद्यनुवादेनज्योतिष्ठोमे दक्षिणावेषम्यसिद्धिः । तस्मादपि मण्डपमध्यभागे कुण्डम् ।

वसिष्ठसंहितायां तु स्पष्टमुक्तम्—

मण्डपं प्रकृत्य कुण्डं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्कम् ।
वितस्तिद्वयखातं तत्कुण्डं स चतुरड्गुलम् ॥ इति ॥

नव कुण्डों पर कुण्डकल्पलता का मत—

कुण्डकल्पतायाम्—अथ वक्ष्यमाणानि कुण्डानि तडोत्सर्गादौ अष्टचतुरस्त्रादिनानाप्रकाराण्यष्टौ तदसंभवे चतुरसाणि वर्तुलानि वा कृत्वा नवममाचार्यकुण्डं वृत्तं चतुरसं वा पूर्वशानयोर्मध्ये कुर्यात् । तदुक्तं शारदायाम्—

अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुकमात् ।

चतुरसं योनिमर्द्धचन्द्रं व्यस्तं सुवर्तुलम् ॥

पदस्तं पङ्कजाकारमष्टास्तं तानि नामतः ।

आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयो ॥

आम्नायरहस्ये—

नवकुण्डविधानेन दिक्षु कुण्डाष्टके स्थिते ।

नवमं कारयेत्कुण्ड पूर्वेशानदिगन्तरे ॥

कुण्डानि चतुरद्वाणि वृत्तनानाकृतानि च ।

सोमशंभूः—

शस्तानि तानि वृत्तानि चतुरसाणि वा सदा ॥

अन्यत्रापि—

वेदास्त्राण्येव तानि स्युर्वर्तुलाण्यथवा क्वचित् ।

पञ्चकुण्डोपक्षे—

कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ।

पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशदिग्गाचरे द्विज ॥

स्त्रीणां तु लिङ्गे विशेषः—स्त्रीणां कुंडानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत् । तत्र च दर्शपौर्णमासयोः पञ्चदशासामिधेनीरनुव्रूयात् सप्तदश-वैश्यस्यैति । वैश्यकर्तृके सामिधेनीसाद्वश्यवत्स्त्रीकर्तृकतुलाकुण्डानां योन्याकारेत्वनियमादाकारान्तरनिवृत्तिः ।

यद्यपि लैङ्गे—नवकुण्डीप्रक्रमात् कुंडानीति बहुवचने यथा प्राप्तानु-वादान्नवकुण्डीपक्षे एव योन्याकारेत्वमिति प्रतिभार्ता । तथाप्युद्देश्यगत-संख्याया ग्रहेकत्ववदविवक्षितत्वान्मत्स्यपुराणोक्ते ।

चतुःकुण्डीपक्षेऽपि—स्त्रीणां योन्याकारेत्व भवति । तथा ब्रह्मादादौ तुलापुष्टविकारे एवमेवकुंडं तस्यापि स्त्रीकर्तृकत्वे योन्याकारेति ।

नव पञ्चाय वैकं वा कर्तव्यं लक्षणान्वितम्—नचात्र वावये पक्षात्र-यस्यापि समविकल्पिकत्वे नवपञ्चकुण्डीपक्षयोरनुष्टानापत्तेः । तस्मात्तत् फलस्य कर्मनिष्ठत्तेः तेषां लोकवत्परिमाणतः फलविशेषः स्यान्नवपञ्चके-कुण्डपक्षाणां फलतारतस्यमेव कल्पयम् । तानि सर्वाणि दक्षासु स्थापनादिषु कर्मसु । हस्तमात्राणि चतुरस्त्राणि कार्याणीत्यर्थः ।

पुराणोक्ततुलादानादौ तु नवकुण्डीपक्षः श्रेष्ठः, पञ्चकुण्डीपक्षः मध्यमः, एककुण्डीपक्षः कनिष्ठः । रुद्रानुष्टानापूतहोमलक्षहोमेवकमेव कुण्डमित्युक्तम् ॥इति ॥

प्रतिष्ठादिमें—मण्डप सोलह हाथ या चौदह हाथ होगा । उसमें स्तंभ बाहर के बारह सात हाथ के होंगे और भीतर मण्डप के चार स्तंभ साढ़े आठ हाथ के होंगे । इन स्तंभों का पंचमाश भूमि के भीतर में रहेगा । मध्यवेदी—एक हाथ ऊँची सवार्फाँच हाथ आठ अंगुल लम्बी-चौड़ी सोलह हाथ के मण्डप में होगी । चौदह हाथ के मण्डप में चार हाथ सोलह अंगुल की होगी । ऊँची एक हाथ होगी । वप्र नहीं होंगे । कुण्ड चौतीस अंगुल का हागा । उसका प्रकार यह है कि—चौतीस अंगुल का जो गज रहेगा उस चौतीस अंगुल के गज में चौतीस अंगुल का चौबीस अंगुल ही बनाना । उस हिसाब से दो अंगुल की नीचे की पहली मेखला, दूसरी तीन अंगुल की

मेखला और तीसरी ऊपर की मेखला चार अंगुल की होगी। इनकी लंबाई नव अंगुल की होगी। चौड़ाई प्रथम दो अंगुल चौड़ाई, और दो अंगुल लंबाई, दूसरी तीन अंगुल चौड़ाई तीन अंगुल लम्बाई और तीसरी चार अंगुल चौड़ाई और लम्बाई होगी। योनी उसी पूर्वाले गज से बारह अंगुल लम्बी पश्चिम दिशा के ठीक मध्य से होगी। इसमें एक अंगुल कुण्ड के भीतर, एक अंगुल कण्ठ और दस अंगुल बाहर रहेगी। इनकी चौड़ाई आठ अंगुल होगी। ऊपर और पीछे की तरफ बारह अंगुल ऊँची और कुण्ड के भीतर यारह अंगुल ऊँची होगी। मध्य मेखला में परिन्तरण छिद्र होगा। नाभी दो अंगुल चौड़ी चार अंगुल लम्बी होगी। छवजा—दो हाथ चौड़ी पाँच हाथ लम्बी वाहन के साथ होगी। पताका—सात हाथ लम्बी एक हाथ चौड़ी शस्त्र सहित होगी। इनमें गेह आदि से शस्त्र—और वाहन बनेंगे।

शतमुख कुण्डका बनानेका प्रकार द्वैतनिर्णयसिद्धान्तसंग्रहमतसे—

शतमुख में अथर्ति सौ हाथ के समक्तुःस मण्डप के तीन भाग पूर्व पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से करे। फी भाग (हिस्सा) तेतीस हाथ आठ अंगुल करे। इस तरह ही जानेपर मण्डप के मध्य नवमांश में दक्षिणोत्तर लम्बी तेतीस हाथ आठ अंगुल की चार रेखा बराबर की दे। प्रत्येक रेखा में पाँच कुण्ड निर्मित होंगे। प्रत्येक कुण्ड का अन्तराल (मध्य) साढ़ेचार हाथ सात अंगुल होगा। अथर्ति—एक कुण्ड के बत्त जाने बाद दूसरा कुण्ड आढ़ेचार हाथ सात अंगुल जमीन छोड़कर बनेगा। इस तरह चार दक्षिणोत्तर लम्बी रेखा में सब बीस कुण्ड बनेंगे। उन रेखाओं का अन्तराल सात हाथ आठ अंगुल होगा। सारांश यह है कि—एक रेखा दक्षिणोत्तर लम्बी देने पर दूसरी रेखा देते समय सात हाथ आठ अंगुल जमीन छोड़कर रेखा दे। इस तरह तीन और चार रेखा में व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

अब बचे हुए असभी कुण्डों का अवशिष्ट आठ नवमांशों में विभक्त करे।

उसका प्रकार यह है कि --प्रत्येक नवमांश में दो-दो कुंड बनेंगे। इस तरह आठ नवमांशों में कुल सोलह कुंड हुए। फिर उन्हीं आठ नवमांशों में क्रम से दिशा और विदिशा में आठ आठ कुंड बन जाने से सौ कुंडों का निर्माण सुगमतया से हो जायगा। -

(क) कुछ लोग प्रधान वेदी ईशान देश में मानते हैं, पर बहुमत से पूर्वदिशा में ही प्रधान वेदी करना ही उचित है।

(ख) इस मण्डप में स्तंभ मध्य के पचास हाथ के चार होंगे। द्वितीय श्रेणी में--तेतीस हाथ आठ अंगुल के होंगे। तृतीय श्रेणी में--पचीस हाथ के स्तंभ होंगे।

(ग) पूजन सोलह ही, स्तंभों का विशेष चिह्न से चिह्नित करना चाहिये, यही विधान है। बाकी का कोई विधान तथ्य शास्त्रों में न मिलता है न देखने में ही आया है।

(घ) सौ कुंड पचीस हाथ के मण्डप में न बनकर पचास हाथ के मण्डप में बन सकते हैं। लेकिन हजारों ब्राह्मण बैठकर इन कुण्डों में हवन नहीं कर सकते।

(च) कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकुर्तेर्वपुः ।

उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे ॥

(छ) कुण्ड तत्त्रोक्तमार्गेण निर्मायाथ सलक्षणम् ।

रक्तमुच्चालिपिष्टाभ्याँ भूषयद्वक्प्रियं यथा ॥

(ज) विधानमालायाम--

आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै कोटिहोम चरेन्नृप ।

कोटिहोमात्परं नास्ति कर्मारिष्टविनाशने ॥

न तत्तुल्यं तया राजा महोत्पातविनाशनम् ।

कोटिहोमे यथाशक्तिरक्षे नाऽप्ययुते तथा ॥

प्रतिवर्षं प्रकर्तव्यं हवनं पुष्टिपर्वनम् ।

किसी के मत से दूसरा प्रकार—

मध्य नवमांश में दक्षिणोत्तर लम्बी क्रम से चार रेखा दे । इन चार रेखाओं में फ्रम से सात कुण्ड बनेंगे । कुल अट्टाइस कुण्ड होंगे । इनमें प्रत्येक कुण्ड का अन्तराल (मध्य) दो हाथ छः अंगुल का होगा ।

अब अवशिष्ट बहत्तर कुण्डों को आठ नवमांशों में विभक्त करे—

उसका प्रकार यह है कि—आठ नवमांशों में अलग-अलग दो-दो कुण्ड बनने से सोलह कुण्डों की व्यवस्था हो जायगी । तदनन्तर उन कुण्डों के बाहर परिधि रूप से तीन-तीन कुण्ड फिर बन जाने से चौबीस कुण्ड हो जायेंगे । इसी तरह पुनः उसी आठ नवमांशों के परिधि रूप से चार-चार कुण्ड बनने से बत्तीस कुण्डों की व्यवस्था से गिनती में सौ कुण्ड हो जाते हैं ।

इन कुण्डों का अन्तराल दो हाथ छः अंगुल ही होगा । ऐसी परिस्थिति में कुण्डों के समीप बैठने से उन कुण्डों की ज्वाला आदि द्वारा महान् क्लेश होगा । अतः यह पक्ष हेय ही है ।

(१) इन कुण्डों में अभिस्थापन नैऋत्य कुण्ड में सर्वथम करे । वही आचार्य कुण्ड होगा । क्योंकि कोई भी कुण्ड अत्यन्त मध्य स्थित न होने के कारण प्रागुदपवर्ग प्रचारानुरोध से नैऋत्य कुण्ड हो आचार्य कुण्ड स्वीकृत न्यान्य प्राप्त है । यह शान्तिमयूख आदि निबन्धों का जोर-दार मत है । प्रशोगपारिजातकार तो किसी तरह मध्य कुण्ड मानकर उसी को आचार्य कुण्ड कह उसी में सर्वप्रथम अभिस्थापन करना चाहते हैं । यह ठीक नहीं । अतः नैऋत्य कुण्ड से ही सर्वथम अभिन्न प्रणयन करे ।

(२) कुछ आधुनिकों का मत है कि—

कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि प्रच्यादिषु विचक्षणः ।

पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशानदिग्गोचरे ॥ और

'आचार्य कुण्डं मध्ये स्याद् गोरीपतिमहेन्द्रयोः' । इन वचनों से ईज्ञान

आदि दिशा का कुण्ड आचार्य कुण्ड हो सकता है। क्योंकि इन वचनों का कोई बाधक वचन नहीं है।

पर यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि मत्स्य-पुराणादि में प्रतिष्ठा आदि प्रकरण में पठित होने से वहाँ ही चरितार्थ होंगे।

शान्तिभयूद्घोक्त प्रकार से शतमृख कुण्ड निमणि —

सौ हाथ समवत्तरस्त्र मण्डप का त्रिभाग हो जाने पर उस त्रिभाग के मध्य नवमांश में पूर्व दिया में—दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा में (उदक् संस्थ) पाँच कुण्डों की एक पक्ति लम्बी बनावे। इसी तरह पश्चिम दिशा में उदक् संस्थ-(दक्षिण से उत्तर) तीन पक्ती और ही जाने पर उनमें भी पाँच पाँच कुण्ड बनेंगे। इस तरह बीस कुण्डों को व्यवस्था हो जायगी।

इन पक्तियों का अन्तराल आठ हाथ सात अंगुल होगा। और प्रत्येक कुण्ड का अन्तराल साढ़े सात हाथ सात अंगुल होगा।

अब अवशिष्ट अस्सी कुंडों की व्यवस्था बतलाते हैं—

उस मण्डप में बचे आठ नवमांशों के फी मध्य में दो दो कुण्ड और बनने से सोलह कुंड होंगे। फिर उन्हीं आठ नवमांशों में बने दो दो कुंडों के बाहर दिशा और विदिशा में आठ आठ कुंड और तेयार हो जाने से अस्सी कुण्डों की सुगमतया व्यवस्था हो जाती है। इस तरह सी कुंड गिनती में आ जाते हैं।

(१) गौतमः—

कोटिहोमेषु नियमा वहवः सन्ति पाश्विः ।

मौनं पद्मासनं ध्यानं हवियान्नं च भक्षणम् ॥

स्थरिङ्गले शथनं गन्धताम्बूलादीनि वर्जयेत् ।

मन्त्रान्तमुच्चरन् हुत्वा हसिरुत्तानपाणिना ॥

सत्यज्य विविधानेतान् ऋत्विजो वर्तयसदा ।

दोपाङ्गियमसन्त्यागान् न होमफलं भशनुते ॥

(२) कोटिहोमे त्वाचार्थपार्थने विशेषः—

त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्तर्व परायणः ।

त्वत्प्रसादेन विषें सर्व में स्यान्मनोगतम् ॥

आपदधिमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् ।

कीटिहोमाख्यभतुलं शान्त्यर्थ सार्वकालिकम् ॥

दशमुख में पद्धति मत और किसी निबन्ध का मत—

पचास हाथ के समचतुरस्त्र मण्डप के नव भाग हो जाने पर उन नव भागों में क्रम से—कुण्डों का निर्माण होगा । जैसे—मण्डप के निर्माणितदेश में—प्रथम कुण्ड, दूसरा—कुण्डपश्चिम देश में, तीसरा कुण्ड—वायुकोण में, चतुर्थ कुण्ड—दक्षिण दिशा में, पाँचवाँ कुण्ड—मध्य के दक्षिण भाग के आधे हिस्से में और छठवाँ कुण्ड—मध्य के उत्तरार्ध भाग में होगा ।

यहाँ यह बात आवश्यक बतला देना चाहिये कि—कुछ भाग पूर्व-दिशा से और कुछ भाग पश्चिम दिशा से लेकर ही कुण्ड द्वय बनवाना चाहिये । अन्यथा कुण्ड बनने में बाधा पड़ सकती है ।

सातवाँ कुण्ड—उत्तर दिशा में, आठवाँ कुण्ड—अग्निदिशा में नवमा कुण्ड—पूर्वदिशा में और दशवाँ कुण्ड ईशानकोण में होगा । इन कुण्डों में आचार्य कुण्ड नैऋत्य दिशा का ही भागुदपवर्गप्रचारानुरोध से होगा । जिसे प्रथम कुण्ड शब्द से कहा गया है । नवग्रहयाग में तो सर्वप्रधान सूर्य होने से मध्य का ही कुण्ड आचार्य कुण्ड होगा, यह शान्तिमयूक्तिठीक है ।

दशमुख शान्तिमयूक्त के मत में—

पचीस हाथ या पचास हाथ के समचतुरस्त्र मण्डप के नव भाग बराबर-बर-बराबर के कर लेने पर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा का ज्ञान मात्र हो ऐसे मध्य नवमांश से बिलकुल सटे चार कुण्डों को बनावे । तात्पर्य यह है कि ये दिशाओं के कुण्ड मध्यनवमांश में ही अधिक रहेंगे,

और उनके बनाने की व्यवस्था ऐसी हो जिससे ब्राह्मण भी सुख से बेठ जाय । और पूर्वदिशा के नवमांश में प्रधान बेदी होगी । बाकी बचे ७ नवमांशों में से छः में क्रम से छः कुण्ड बनवा दे । एक नवमांश बिलकुल ही छोड़ दे । इस तरह दस कुण्डों की व्यवस्था होगी । इसी पक्ष को द्वैतनिर्णयसिद्धान्त संग्रह आदि निबन्धों ने भी लिखा है ।

शतमुख मण्डपका निर्माण प्रकार—

सौ हाथ समचतुरस्त्र—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से तैयार हो जानेपर उस मण्डप के चारों दिशाओं से सूत्रों द्वारा दस विभाग करने से प्रत्येक दस-दस हाथ परिमित सी कोष्ठ होंगे । यह कुण्डरत्नावली और शान्तिसार का पक्ष है ।

(१) प्राचीसूत्रमुदकसूत्रं च दशधा विभज्य दश दश प्रागग्राणि दद्यात् । तेन दशहस्ताः शतं कोष्ठयः सम्पद्यन्ते । तेषां च मध्यं प्रसाध्य छिह्नस्तकुण्डानि कुर्यात् । तानि चैकैकस्यां वीथ्यां दश दशेत्येव दशवीथीं कुर्यादात् [लिखितकोटि होमपद्घती] ।

द्विमुख मण्डप और कुण्ड—

पचीस हाथ के समचतुरस्त्र मंडप का फी भाग आठ हाथ आठ अंगुल करे । इस प्रकार नवभाग करने पर मध्य नवमांश मे—पूर्व दिशा से और पश्चिम दिशा से कछ हिस्सा लेकर उसके मध्य नवमांश में मिलाकर उसमें दो कुण्ड दक्षिणोत्तर बना दने से द्विमुख कुण्ड तैयार हो जायेंगे । इसमें आचार्य कुण्ड दक्षिण दिशा वाला होगा । वही प्रवान कुण्ड कहा जायगा ।

(१) क्रियासारे—

नारिकेलदलैर्वापि पल्लवैर्वथि वेणभिः ।

आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवजे तु सर्वतः ॥

क्षारकातिष्ठके—

वितानर्भमाद्यैरलं कुर्वीत मंडपम् ।

गोतमीतन्त्रे—

शुष्पमालावितानाद्यं सर्वाश्रयमनोहरम् ॥

सिद्धान्तशेखरे—

कुतपल्लवमालाद्यं वितानैरूपशोभितम् ।

विचित्रवस्त्रसंछन्नं गुह्यस्तंभविभूषितम् ॥

फलैर्नानाविधैर्भृद्यैर्दणेऽग्रामरैरपि ।

भूषितं मण्डप कुर्याद्वित्तनपुष्पसमुज्ज्वलम् ॥

मण्डपस्तंभविषये—

कालोचरे—वस्यवन्दनपुष्पाद्युं वस्त्रचन्द्रभूषिताः ।

हयशीषंच्चरात्रे—

दर्पणैश्चामरैघण्टे। स्तयान् वस्त्रैर्बिभूषयेत् ॥

(2) कुण्डकल्पलतायाम्—कोटिहोमं प्रकृत्य—हस्तैश्चतुर्भिस्तन्मध्ये कुण्डकार्य समन्ततः । तस्य चाकारविशेषानुक्तेः ।

श्रौत और कर्मों में कुण्ड तथा मण्डप मुख्य हैं या गौण स्मार्तादि—

श्रौत—स्मातं और तान्त्रिक ये तीन प्रकार के कर्म हैं । पौराणिक कर्म तान्त्रिक में ही अन्तर्भूत हैं । पौराणिक कर्म को पृथक् मानने वाले चार प्रकार के कर्म मानते हैं ।

श्रौत और स्मार्त कर्म के प्रतिपादक आश्वलायन आदि श्रौत सूक्त गृह्यसूत्र, मनु आदि स्मृति और गोतमादि धर्मसूत्र भी हैं । इनमें कुण्ड-मण्डप की परिभाषा देखने में नहीं आती है । परन्तु मण्डप का यज्ञशाला शब्द से और कुण्ड का वेदों शब्द से व्यवहार होता है ।

वेदं कृत्वा वेदि करोति । वेद्यामिव हुताशनः ।
अमी वेदि परितः वलृप्तघिष्याः ।

इत्यादि स्थलों में वेदी शब्द से कुंड का ग्रहण है । और यज्ञशाला, पत्नीशाला स्थलों में मंडप के लक्षण से यज्ञशाला आदि का लक्षण भिन्न है । तान्त्रिक तो सम चतुरस्र चार द्वार, चार उपद्वार और मध्य में ऊंचा मंडप कहते हैं । वैदिक तो एक द्वार, पता का आदि रहित तथा मध्येन्द्रिय रहित मंडप बनाते हैं । योनी गर्ता आदि सहित कुंड तान्त्रिकों को अभिमत है । वैदिकों को कुंड में योनि गर्ता अभिमत नहीं हैं ।

कुंड-मंडप की आवश्यकता—

नित्यं नैमित्तिकं हित्वा सर्वमन्यत्समंडपम्—कोटिहोमपद्धति और मत्स्योक्त वचन से काम्यकर्म में मंडप आवश्यक है । नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में ऐच्छिक है । नित्यं नैमित्तिकं होम स्थाण्डले वा समाचरेत् । शारदातिलक मत से नित्य और नैमित्तिक कर्म स्थाण्डल या कुंड में करें, परन्तु काम्यकर्म को कुंड में ही करें ।

कर्मभेद उनके उदाहरण विभिन्न मतों से—

कर्म तीन प्रकार के हैं, नित्य नैमित्तिक और काम्य । अहरह सन्ध्यामुपासीत । पञ्चयज्ञान्न हापयेत् । यावज्जीवमग्निहोत्रं सुह्यात् । दशावृणमासाभ्यां यजेत इत्यादि नित्यकर्म हैं । षण्वतिश्रांद्वादि नैमित्तिक वश किये जाते हैं । नित्य और नैमित्तिक कर्म न करने से प्रत्ययाय होता है । जिस कर्म को न करने से प्रत्ययाय न हो और करने से वृद्धि हो उसे काम्य कहते हैं । जैसे—तीर्थयात्रा, व्रत, दान, यज्ञ, शान्तिक तथा पौष्टि—यह मीमांसक मतानुसारिकर्मकाण्डयों का सिद्धान्त है । यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनोषिणाम् । एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यवत्वा कलान च ॥ कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चतं मतमुत्तमम् (भ० गी० अ०

१६) इत्यादि वचन से सिद्ध है कि फलाभिलाषी न होकर क्रियमाण-काम्यकम् भी निष्काम कर्म होते हैं। यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है।

कुण्ड-मण्डप का प्रयोजन—

तीन प्रकार के कर्म होते हैं—दृष्टफल अदृष्टफल और दृष्टफलक। वृष्टिकामः कारीर्या यजेत इत्यादिश्रुतिसे विहित कारोरेष्टचादि वृष्टिरूप ऐहिक फल का जनक होने के कारण दृष्टफलक कर्म है। यावज्जीवभ-ग्निहोत्रं जुहुयात्। इत्यादि विविधोधित अग्निहोत्रादि अदृष्टफलक कर्म है। दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् इत्यादि इन्द्रियकामना के लिये अग्निहोत्र-विधि दृष्टादृष्टफलक है। अग्निहोत्रविधि स्वत्वरूप से अदृष्टफलको दधिरूप गुणांश से दृष्ट इन्द्रियफल को भी उत्पन्न करता है। प्रश्न—प्रतियोगी और अभाव का विरोध होने के कारण दृष्ट और अदृष्ट का एकत्र समावेश कैसे होगा। उत्तर—हम दृष्टादृष्ट का एकत्र समावेश नहीं कहते हैं किन्तु दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् यह गुणविधि दृष्टादृष्टफलक है। इतना ही कहते हैं, यह विरुद्ध नहीं है। घट और घृधंवंस दोनों का कारण जैसा दण्ड है। इसी प्रकार कुण्ड और अदृष्ट उभय फलक हैं। वप्र-गतादि अंश से हवि का सम्यक् पाक होता है और होताओं को ज्वाला आदि सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये कुण्ड दृष्टफलक है और नहीं, भी योनी, कण्ठ आदि अंश से अदृष्टफलक भी है वहाँ दृष्टफल सम्भव नहीं है विधिवलात् नाम्यादि निर्माण होता है। अतः स्वगार्दि अदृष्टफल की वहाँ कल्पना की जाती है। स स्वर्गः सर्वान् प्रत्यविष्टत्वात् इत्यादिवास्त्र से अश्रुतफल में स्वगंकल माना जाता है। एवं मण्डप भी बातप वर्षादि का निवारक होने से दृष्टफलक है और स्तम्भपरिमाण, स्तम्भनिवेश का प्रकार विशेष इतर दारु का सन्निवेशप्रकारविशेष इत्यादि नियमांश से अदृष्टफलक भी है। जैसे—ब्रीहीनवहन्ति यहाँ पर अवहनन विधि तप्त्वुलनिष्पादक होने के कारण दृष्टफलक है और अवहनन से ही निष्पादक करना नखविदलनादिना नहीं करना इत्यादि नियमांश से अदृष्टफल भी है।

मण्डप का लक्षण —

मण्डपोऽत्री जनाश्रयः—अमर०। यद्यपि मण्डपशब्द सामान्य जनाश्रयवाची है। तदनुसारं उत्सार्थं गृहमण्डपान्। लतामण्डपः। समामण्डपः। इत्यादि प्रयोग भी मिलते हैं। तथापि प्रकृतोपयोगी तान्त्रिक परिभाषा-सिद्ध मण्डपलक्षण कहते हैं—पञ्चरात्राद्युक्तरचनावत् यज्ञायनत्वं मण्डपस्य लक्षणम्। पञ्चरात्राद्युक्त रचनावाला यज्ञ का आयतन मण्डप होता है। विशेषण न कहें तो वैदिक—यज्ञशालादि में अव्याप्ति होगी। और विशेष न कहें तो देव प्रसादादि में अतिव्याप्ति है, इसलिये दोनों आवश्यक है।

बण्डप का स्वरूप —

मण्डप दो प्रकार का है—स्थिरस्वास्तुरूप और चलवास्तुरूप। प्रतिष्ठाये के कर्मोपयुक्तोऽस्थिरद्रव्यनिर्मितश्चलः। शिलेष्टकादिनिर्मितः पर्यायेण बहुकर्मोपयुक्तः स्थिरमण्डप इत्युच्यते। अस्थिर द्रव्य निर्मित चल और स्थिर द्रव्य निर्मित अचल मण्डप होता है। गर्भागारस्य पुरतः सुजनासीति मण्डपः। तत्र नन्दी तु संस्थाप्यो देवस्याभिमुखः स्थितः। तदग्रे नवरञ्जाख्ये मण्डपं रचयेत्सुधीः। तत्पुरो बलिपीठं च तदग्रे घ्वजदण्डकम्। तत ईशानदिभागे यागमण्डपमारचेत्। स्थिरतास्तुविधानेन शिवयागादिसिद्धिये। नात्र दावर्दिनियमो भविता द्वारमेव मुदीरितम्। तदा तदा ग्रागकाले तौरणं स्यात् पृथक्-पृथक्। यद्द्रव्यं देवसदनं तद्द्रव्येणैव कारयेत्। नात्रोपयुक्तत्वदोषो भवितात्र स्वतः क्वचित्। तत्तकर्मसु पार्थक्याद्दास्तुहोमादिकं च रेत् (क्रियासार)।

मण्डप प्रकार —

तत्तकर्मोपयुक्तद्वादशहस्तादि विस्तारवान् प्राप्ते द्वादशभिर्मध्ये चतुर्भिश्चस्तरधैविधृतः मध्योच्छ्रुतश्चतुर्दिक्षु क्रमावतीर्णपटलश्चतुरस्क्षचतुर्दिक्षु द्वार-तोरणवान् ययोक्तवासनानि वेशवान् किञ्चिद्दुच्छ्रुतभूमिकस्तान्त्रिकाभिमतो मण्डपः।

कुण्ड स्वरूप—

तत्त्वकर्मनुरूपपरिमाणवन् मेखला गतं-कण्ठ-योनि-नाभिमत् अग्न्या-
यतनं तान्त्रकाभिमतं कुण्डमुच्यते ।

स्थण्डिलस्वरूप—

हवनकर्मपर्यासो वालुकादिद्रवयैरास्त्वतश्चतुरेकाद्यङ्गुलोत्सेघो भूभागः
स्थण्डिलम् । इसमें कुण्डधर्म मेखलादि कोई मानते हैं कोई नहीं मानते
हैं । अतः मेख आदि कृताकृत हैं ।

न्यूनाधिकप्रमाण से भी कुण्ड और मण्डप कर्मपियोगी होते हैं वा नहीं—

शास्त्रमें कुण्डका प्रमाण होमसंख्याके अनुसार विहित है । उसमें भी
मुष्टि मात्रकितं कुण्ड शतार्धे साप्रचक्षते (शारदा०) एकहस्तमिदं कुण्ड
शतार्धे सम्प्रचक्षते (शारदा०) यह दो प्रकार विहित है । सिद्धान्तशेखरमें
त्रिकरं व्यवस्था कोटिहोमपद्धतिकार ने की है—एतत् शीघ्रदाहिष्ठृता-
दिद्रव्यहोमविषयम् । तिळयवादिस्थलद्रव्यहोमे तु होमसंख्याविशेषान्तमेव
कुण्ड ग्राह्यम् । धृतादि होमद्रव्यमें अल्पपरिमाण और स्थूलद्रव्यमें अधिक
परिमाण का कुण्ड होता है । यह व्यवस्था विकल्प जहाँ दो वचनका
तुल्यबलविरोध ही वहाँ माना जाता है । तुल्यबलविरोध विकल्पः—यह
शास्त्रसिद्धान्त है । वह विकल्प दो प्रकारका है व्यवस्थितविकल्प और
तुल्यविकल्प । जहाँ व्यवस्थापक कोई हो उसको व्यवस्थित कहते हैं ।
जहाँ व्यवस्थापक न हो उसको तुल्य कहते हैं । उदिते जुहोति अनुदिते
जुहोति । यह दो वाक्य हैं । प्रथमश्रुतिसे सूर्योदयानन्तर अग्निहोत्र विहित
है वीर द्वितीयश्रुतिसे सूर्योदयात् प्राक्सिद्ध है । ये दोनों श्रुतियाँ अग्निहोत्र
विधायक नहीं हैं । अग्निहोत्र तो—यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्—इसीसे
सिद्ध है, किन्तु अग्निहोत्र का अनुवाद करके तनज्ज्ञभूत काल विधायक ये
श्रुति हैं इसीलिये इनको गृणविधि कहते हैं । यद्यपि यहाँ विधिवाकक
लिङ्गादि नहीं है । तथापि लट्का लिङ्गत्वेन विपरिणाम होता है इन
दोनों श्रुतियों का परस्परविरोध होने पर दोनों तुल्यबलहैं, अतः विकल्प

का आश्रयण होता है। वह भी जिनके सूत्रमें उदितहोम विहित है उनको उदित होमी होना। चाहिये और जिनके सूत्र में अनुदिनहोम विहित है। उनको अनुदित होम करना चाहिये; यह व्यवस्थित विकल्प है। अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति। नातिरात्रे षोडशनं गृह्णाति। इत्यादि में व्यवस्थापक न होनेसे तुल्यविकल्प है। अतः अतिरात्रयाग में षोडशग्रह ग्रहण ऐच्छिक है। प्रकृतिमें कुण्डके विषय में न्यूनाधिक व्यवस्थित परिमाण प्रतिपादक वाक्यों से व्यवस्थापक गुरुलघुद्रव्यादि हैं अतः विकल्प माना जाता है। इस प्रकार यावत्संख्याक होममें यावत्परिमाण कुण्ड विहित है वहाँ उसमें न्यूनाधिक परिमाणवाला कुण्ड कहा जाता है। एतादृश न्यूनाधिक परिमाण कुण्डका भी कहीं कहीं उपयोग होता है। न्यूनसंख्यादिते कुण्डाधिको होमो विधीयते। अनुकृतकुण्डे न्यूनस्तु नाधिके शस्यते व्यवचित् (कोटिहोमपद्धतिः) न्यूनसंख्यावाले कुण्ड में अधिक हवन होता है अधिक संख्यावाले कुण्ड में न्यूनहवन नहीं होता है। इस वचनसे न्यूनकुण्ड में अधिकहोम शास्त्रकारों को अभिमत है यह सिद्ध है। इसी प्रकार अधिक कुण्ड में न्यूनहोम भी कहीं आभिमत है कोटिहोमपद्धति में—न्यूनसंख्येऽपि स्थूलद्रव्यपरिमाणाधिकादावधिकसंख्योक्तमपि कुण्ड भवति। अथत्परिमाणम्—इति कात्यायनीत्तः। न्यूनसंख्यहोम में भी अधिकहोमसंख्यावाला कुण्ड होता है यह लिखा है कुण्डरत्नावली में भी आहृति तात्त्वसे कुण्डविस्तार कहकर अन्तमें कहा है कि—कुण्ड व्यवस्था पृथुसूक्ष्ममानाद् द्रव्यस्य कार्या स्वाधिया सुवीभिः कुण्डव्यवस्था द्रव्यके स्थूल और सूक्ष्ममानसे अपनी बुद्धिसे विद्वानों को कर्त्ती चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि—चर्वादिगुरुद्रव्यहोम में अधिक प्रमाण भी कुण्ड ग्राह्य है। शतार्धेरत्तिः स्यात्—इत्यादि वचनसे शतार्धं शतं सहस्रादि हवन में कुण्ड का विधान सिद्ध हुआ। परन्तु शतादि आन्तरालिक संख्याक होम में कुण्ड परिकाण कितना कितना हो इस शंकाको दूर करने के लिये 'न्यूनसंख्यादिते' यह वचन है। इसलिये नवशत अष्टशतादि अनुकृतकुण्डकहींम सहस्रहोमोदित कुण्ड में नहीं करना किन्तु पूर्वकथितशत-

संख्याकहोमकुण्ड में ही करना यह सिद्ध होता है। इस प्रकार 'न्यून-संख्योदिते' यह वचन अनुकूल कुण्डक आन्तरालिक होम में न्यून कुण्डका विधायक हुआ। तब यही वचन अधिक कुण्ड में गुरुद्रव्यक न्यून होम का निषेध नहीं कर सकता है। क्योंकि दो कार्य का विधान करने से वाक्य भेद दोष होता है। पूर्वार्द्ध से न्यूनकुण्ड में अधिक होमविधान और उत्तरार्द्धसे अधिक कुण्ड में न्यून होम का निषेध। विधानद्वय करने में 'अनुकूल कुण्डों 'न्यूनस्तु' यह अनुकूल कुण्ड स्वरूप जो हीम का विशेषण है यह बाधित होता है। कदाचित् कहें कि—

न्यूनानिधिकं न कर्तव्यं कुण्ड कृर्याद्विनाशनम् परशुराम ॥०॥ इस वचनान्तर के रहते अधिक कुण्ड उपादेय नहीं हो सकता है, तो इसका उत्तर यह है कि यह वचन भी प्रकृतार्थ साधक नहीं है। किन्तु इस वचन का होना नाधिकाङ्ग लक्षण रहित कुण्ड निषेध में ही तात्पर्य है। इस वचन के पूर्व—

'आयामखातविस्तारायथातथं तथातथम्' यह वचन है और 'खातेऽधिके भवेद्रोगी होने घेनुधनक्षय' यह उत्तर वचन है। इस प्रकार पूर्वपरपर्यालोचनया अलक्षण कुण्ड का निषेधक ही परशुराम वचन है, कि अधिक कुण्ड में अल्पाहृति का नहीं यह स्पष्ट है।

कोई विद्वान्—अनुकूलकुण्डो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित् । यहाँ क्वचित् शब्दसे अधिक कुण्डमात्रमें न्यूनहोम का निषेध करते हैं परन्तु वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चार हाथ के कुण्ड में जिसमें दो-दो हाथ के चार भुजमान हैं वहाँ पर 'खातं क्षेत्रसमं प्राहुः' इत्यादि शास्त्र से दो हाथ के खात करने पर कुंडावकाशरूप क्षेत्रफल आठ हाथ का होता है, एवं द्वित्रिहस्तादि कुण्डमें सर्वत्र क्षेत्रफल के आधिक्य होने पर भी द्विहस्त त्रिहस्त चतुर्हस्त कुण्ड यही व्यवहार प्रामाणिक कहते हैं, विचार करने पर तत्तद्वोम के प्रति ये भी अधिक कुण्ड हैं। तो क्वचित् शब्द से यदि अधिक कुण्डत्वावच्छिन्न में न्यूनहोमसामान्य निषेध माना

जाय तो इन कुण्डों का भी निषेध हो जायगा । कोटिहोमपद्धति में स्पष्ट कहा है कि – यद्यपि द्विस्तत्रिहस्तादिकुण्डेषु हस्तमात्रमेव खातं युक्तम् अन्यथा क्षेत्रफलाधिक्यात् । तथापि वचनादधिकमपि खातं न दोषाय, आगे चलकरलिखा है —

एतेन कुण्डभूतलमेव क्षेत्रफलमितिवदन्तः परास्ता ।

गर्तस्य न्यूनाधिक्येऽपि भूतले प्रमाणाधिक्यन्यूनत्वाद्यसंभवात् ।

सिद्धस्य भूतलस्य फलत्वायोगाच्च ।

साध्यस्त्ववकाशः फलत्वेनाभ्युपगन्तुं युक्तम् ।

न च ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ सिद्धस्यम्

स्वर्गस्य कथं फलत्वाभ्युपगम इत्याशङ्कनीयम् ।

तत्रापि साध्यस्य कर्तृस्वर्गसम्बन्धस्यैव फलत्वमिति सन्तोष्टव्यम् ।

कुण्डभूतल ही क्षेत्रफल है, यह भी ठीक नहीं है । जिस प्रकार द्वित्रि हस्तादि कुण्डमें क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी न्यूनहोम वचनबलसे होता है । इसी प्रकार चर्वादिगुरुद्रव्यहोम भी में अधिक कुण्ड ग्रहण शास्त्रकारों को अभिप्रेत है । इससे सिद्ध हुआ कि न्यूनाधिक कुण्ड भी वचनबल से कहीं कर्मोपयोगी होता है ।

एवं न्यूनाधिक मण्डप भी कर्मोपयोगी होता है । विशद्वस्तप्रमाणेन मण्डपकूटमेव वा (कोटिहोमप०) । लक्षणरहित मण्डप को कूटमण्डप कहते हैं । यह कूटमण्डप स्वलक्षण मण्डप के अभाव में है ।

सलक्षण मण्डपासम्भवे छायामात्रं कर्तव्यम् ।

तत्र अपूर्वप्रयुक्तत्वाद्वर्मणां यवेष्विव व्रीहिधर्मः

मण्डपपूजादयोऽप्यत्र भवन्ति ॥ (कोटिहोम पद्धतिः)

अलक्षण मण्डप में भी यवों में व्रीहीधर्म के सदृश मण्डप पूजादि होते हैं । तात्पर्य यह है कि - दर्शपूर्णमासयाग में पुरोडाश के लिये व्रीही

संस्कार के लिये—ब्रीहीन् प्रोक्षति । ब्रीहीनवहन्ति । इत्यादि श्रुति हैं । ब्रीही के अभाव में यव गृहीत होते हैं । वहाँ यवों का भी प्रोक्षणादि संस्कार हो या नहीं इस संशय में 'ब्रीहीन् प्रोक्षति' इत्यादि विविवाक्य में यव का ग्रहण नहीं है । अतः यव का प्रोक्षणादि संस्कार न होना चाहिये ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ । सिद्धान्त यह है कि ब्रीही प्रतिनिधियों का भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है । असंस्कृत द्रव्ययाग योग्य नहीं होते हैं । और अङ्ग कर्मसे जनित अपूर्वप्रधान कर्मसाध्य परमापूर्व को उत्पन्न करते हैं वही परमापूर्व धर्म पुण्य इत्यादिशब्दों से कहा है । यदि अङ्गजन्य अपूर्व लुप्त कर दिये जाँय तो परमापूर्व विकल होगा । परमापूर्व विकल होने से स्वर्गादि इष्ट फल का सार्थक न होगा । इसलिये अङ्गापूर्व के लिये यवों में भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है । इसी प्रकार मण्डपप्रतिनिधित्वेन उपादीयमान छायामण्डपमें भी अपूर्वोत्पत्ति के लिये वास्तुहोम मण्डपपूजादि होते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि छाया मण्डप भी कर्मोपयोगी है । इससे वह भी सिद्ध हुआ कि अलक्षण-मण्डपनिन्दा परक वचन सलक्षण मण्डप सम्भव में अलक्षण मण्डप निषेधपरक है ।

स्थण्डिल का स्थान—

कुण्डमेवं विधं न स्यात् स्थण्डिले वा समाचरेत्—इत्यादिप्रमाणसे स्थानापन्नं स्थण्डिल का भी वही स्थान है जो कुंड का है । तत्स्थानापन्नस्तद्वर्म लभते स्थानधर्माणां स्थाप्यतिदेशः । कुंडस्थानापन्न स्थण्डिल भी कुंडस्थान में ही होता है स्थानान्तर में नहीं । सीमाभावे पूतीकान-भिषुण्यात्—इत्यादि स्थल में सोम स्थानापन्न पूतीकाओं में भी क्रय आप्यायनादि सब धर्म होते हैं । अतः हवन प्रधानकर्म में एक कुंड पक्ष में मध्य में कुण्ड होना निश्चित है तो कुण्डाभाव में स्थण्डिल भी मध्य में ही होगा । यदि मध्य में कुण्ड है और १०० । २०० आहुति

भी मण्डप में करना है। तब भी मध्यस्थित कुण्ड में अधिक प्रमाण भी वह होना उचित है, कुण्डापाश्वर्म में स्थग्निल निर्माणकर नहीं।

कुण्डसिद्धिके अनुसार कुण्डों का नाम—

- (क) एक हाथ के कुण्ड में चौबीस अंगुल होता है।
- (ख) दो हाथ के कुण्ड में चौतीस अंगुल होता है।
- (ग) तीन हाथ के कुण्ड में इकतालीस अंगुल पाँच यव होता है।
- (घ) चार हाथ के कुण्ड में अड़तालीस अंगुल होता है।
- (ङ) पाँच हाथ के कुण्ड में तिरपन अंगुल पाँच यव होता है।
- (च) छः हाथ के कुण्ड में अट्ठावन अंगुल छः यव होता है।
- (छ) सात हाथ के कुण्ड में तिरसठ अंगुल चार यव होता है।
- (च) आठ हाथ के कुण्ड में छाछठ अंगुल सात यव होता है।
- (झ) नव हाथ के कुण्ड में पचहत्तर अंगुल होता है।
- (ज) दस हाथ के कुण्ड में पचहत्तर अंगुल सात यव होता है।

(१) पौष्कलसंहितायाम्—

नाकुण्ड हवनं यस्मात्सिद्धकृन्मन्त्रयाजिनाम् ।

ब्रस्माकुण्ड सदा कार्यं सौत्रं वा जङ्घमं स्थिरम् ॥

(२) उत्तरतन्त्रे—

नवैकादशकुण्डानि कुर्यादुत्तममण्डपे ।

बतुष्कुण्डी मध्यमे स्यात्कानिष्ठेककुण्डकम् ॥

पुराण्यार्णवे—

नव पञ्चाथ चैकं वा कर्तव्यं लक्षणान्वितम् ।

(३) क्रियासारे—

दिक्षु द्वाराणि चत्वारि कुयन्मण्डप मध्यतः ।

(४) कुण्डकल्पलतायाम्—

वर्जयेन्निम्बकाष्ठानि कशराक्भवानि च ।

अगस्तिशिग्रुवृक्षोभैर्मण्डप नैव कारयेत् ॥

(५) यवादूनं प्रमाणं तु मण्डपादौ न चिन्तयेत् ।

सूत्रस्याधो विलीयन्ते यूकालिक्षादयस्तथा ॥

(६) पञ्चमेखला पक्ष में मेखलाओं^५को यथारुचि रूप इारा सुवोभित करे ॥ कोटिहोमपद्धति ॥

(७) ध्वजापतादि अधिक भी मण्डप की शोभा बढ़ाने में रख सकते हैं । दश दिक्पालों की ध्वजा और पताकाओं से इचका कोई सम्बन्ध नहीं है यह कोटिहोम पद्धतिकार लिखते हैं ।

(८) सांवपुराणे-ग्रहस्मांस्तु ध्वजे विष्णोरीश्वरस्य ध्वज वृषः ।
ब्रह्मणः पद्मजं कार्यं रवेव्योम स्मृतो ध्वजे ॥ मयूरः कार्तिकेयस्य
हेरम्बस्य च मूषकः । कुञ्जरो देवराजस्य महिषो ध्वजे ॥ सिंहोऽवजे
ब्रुदुर्गाया इत्येषा ध्वजकल्पना । यस्य यो वाहनः प्रोक्तो ध्वजस्तस्य
च एव तु ॥

(९) रक्तचन्दनकाष्ठैश्च खदिराश्रत्थकिशुकैः । अन्यैश्चैवापि
बाज्ञीयैः कर्तव्यं स्तुक्स्तुवादिकम् ॥ काण्ठैरमीभिः कर्तव्यं मुसलो-
खचूबं तथा ।

(१०) पञ्चरात्रे-विचित्रस्तम्भविन्यासं रचना चरितं शुभम् ।
धम्बियं मनोपेतं मण्डपं कारयेद् बुधः ।

(११) मेरुतन्त्रे—मण्डपं मण्डयेद्राद्वशाखाभिस्तु समन्ततः । विमलेन वितानेन पताकामिश्र भूषयेत् ॥ दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान् वस्त्रै विभूषयेत् । कलशैर्घण्टिकामिश्र साधारैर्गण्डकैस्तथा ॥ मण्डप भूषयित्वैवं जाह्नवीवालुकां शुभाम् । बाह्यदेशेषु विकरेत् पञ्चगव्येन प्रोक्षयेत् ॥

(१२) प्रतिमां पिण्डिकां वापि कुण्डं मण्डपमेव च । तोरणं च ध्वजं चैव गुणाढचं पात्रमेव च ॥ मानहीनं न कर्तव्यं फलप्राप्त्यर्थिभिः सदा ।

(१३) कुण्डार्के—यस्मात् ग्रन्थाच्चातुरस्त्रादिकं कृतं तस्मादेव पद्मादिकर्तव्यमितिनियमः । अथवा यस्मात्पद्मादिकं तस्मादेव चतुरस्त्रादिकं कार्यमित्यपि । किन्तु नामाकारसदृशस्य क्षेत्रफलस्य च नियमादेकस्मादेकमपरस्मादेकं कृतमपि दोषो नास्तीतिसिद्धम् । अत एव कुण्डसिद्ध्यादेरष्टास्त्रादिकं कुण्डाकदिः पद्मादिकं याज्ञिकाः कुर्वन्ति ।

(१४) पवमानपद्मौ—समुद्रगा नदीतीरे सङ्गमे वा शिवालये । आरामे विष्णुगेहै वा देवखातादिसन्निधौ ॥ गृहस्येशानभागे वा गङ्गातीरे विशेषतः । स्थिण्डिले पर्वताग्रे वा गृहाग्रे वा गृहाङ्गे ॥ मण्डपस्तु प्रकर्तव्यः शुभलक्षणलक्षितः । गृहाग्रे यदि कुर्वीत तत्समां कुण्डं परित्यजेत् ॥

(१५) अर्धचन्द्रकुण्ड—चतुरस्त्रक्षेत्र का चौबीस हिस्सा कर सवा दो अंगुल पूर्व दिशा में सवा दो हाथ पश्चिम दिशा में छोड़कर दक्षिणोत्तर रेखा देने से अर्धचन्द्र कुण्ड बन जाता है ।

दूसरा प्रकार—चतुरस्त्र कुण्ड में नव रेखा कर आदि और अन्त में एक-एक भाग को छोड़कर दक्षिणोत्तर रेखा द्वारा देने से तथ्यार क्षे जाता है ।

(१६) पद्मकुण्ड—वारह अंगुल चार यव का एक वृत्त बनाकर उसके बाहर पन्द्रह अंगुल एक यव और दो यूका का दूसरा वृत्त बनाकर

रेखा द्वारा कुण्ड बन सकता है। या छः छः अंगुल के पाँच वृत्त बनाकर पच बनावे। देखिये—विशेष निर्णय सिन्धु में।

(१७) कुण्डकौमुद्याम्—नित्यहोमे च दीक्षायां देवतास्थापने तथा। शान्तौ पुष्टौ च साहस्रे होमे कुण्ड करात्मकम् ॥

(१८) उत्तमा नवकुण्डी स्यात्सप्तकुण्डी च मध्यमा। पञ्चकुण्डाक्षमा प्रोक्ता कैश्चिमात्स्यवचोबलात् ॥

(१९) कुण्डमण्डपे—पञ्चहस्ता छवजाः प्रोक्ता वैपुल्येन द्विहस्तकाः। अथवा बाहुमात्राः स्युः सर्वा वितस्तिविस्तृताः ॥

(२०) अरणी की लम्बाई चौबीस अंगुल, चौड़ाई छः अंगुल और ऊँचाई चार अंगुल होती है।

(२१) जिस लकड़ी में रज्जू लपेट कर मन्थन किया जाता है उसका नाम चात्र है। वह बारह अंगुल का होता है।

(२२) चात्र को गोकने के बास्ते छिद्र युक्त जो ऊपर से लगाया जाता है। उसका नाल ओविली है। उसका भी प्रमाण बारह अंगुल होता है।

(२३) जिस रस्सी से मन्थन किया जाता है। उसका नाम नेत्र है।

(२४) चात्र के नीचे के हिस्से में उत्तराणि से पृथक कर जो कील लगायी जाती है। वह आठ अंगुल की होती है। उसका नाम प्रमन्थ है।

(२५) मन्थन के समय में अरणी को पृथ्वी पर केवल न रखकर कंबल मृग चर्म आदि के ऊपर रखने का विशेष नियम है।

(२६) कोटिहोमे—मण्डपे मध्यमाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः। समन्ततस्त्रिभागेन परितो द्वादशापरे ॥ शालवृक्षोदभावाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः। समन्ततास्त्रिभागेन द्वादशान्ये च वेदितः ॥

(२७) क्रियासारे—आच्छाद्य मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जन्तु सर्वतः ।

(२८) महाकपिलपञ्चरात्रे—मण्डपस्य प्रतिदिशां द्वारण्येतानि कारयेत् ।

(२९) कुडरत्नावल्याम्—एकं कुडं गुभदं मध्ये शान्तौ जपाङ्ग-हवनेषु । आरभ्यैकाद्वशनीं लघुमहदतिरुद्रहवनविधौ ॥

(३०) मण्डपः—महारुद्र-विष्णुयाग- देवप्रतिष्ठा - जलशयाद्युत्सर्ग-राज्यभिषेक-तुलादानादि-लक्ष्मीमादि सकलस्मार्त-पौराणिक-तान्त्रिक-शान्तिक-पौष्टिककर्मोपयुक्तः अष्ट-दश-द्वादश-चतुर्दश-षोडशा-षट्ठादश-विंशति - चतुर्विंशति - अष्टाविंशति - द्वात्रिंश - दादिहस्तविस्तारवान् कोटिहोमे पञ्चाशद्वस्त-शतहस्तविस्तारवन् प्रान्ते द्वादशभिः मध्ये चतुर्भिः स्तम्भैविधृतो मध्योच्छ्रूतः चतुर्दिक्षु-द्वार-तोरणद्वारवान् चतुर्दिक्षु क्रमावतीणपटलः यथोक्तदारुसन्निवेशवान् ध्वजपताकादियुतः किञ्चिच्चुच्छ्रूतभूमिकः चतुर्स्त्रः तान्त्रिकाभिमतः पञ्चरावाद्युक्तरचनावान् स्थण्डिलविशेषो मण्डप इत्युच्यते ।

(३१) देशश्च स्वीय एव प्रशस्तो न परकीयः । परकीयप्रदेशेषु कृतं भवति निष्फलमिति दोषप्रवणात् । असम्भवे अनुज्ञया परकीयभूमावपि कुण्डादिकं कर्तव्यम् । तथा च महाभारते—

नानुज्ञातभूमिहि यज्ञस्य फलमश्नुत इति ।

नदीतीरादौ तु परिग्रहादेव स्वत्वसिद्धेरदोषः ॥

(३२) परशुरामकारिकायाम्—सत्यवादी सदाचारी विवेकी स्थिरसाहसः । शास्त्रज्ञोऽथ विनीतश्च ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । ब्रह्मणो-वाऽथ शिल्पी च ये चान्ये चाप्रमादयः । परीक्ष्य च कारयेत्कर्म तत्सर्वं सफलं भवेत् ।

(३३) कुण्डोद्योते—हस्तोव्रतं तदर्थं वा मण्डपस्थलसत्र तु ।

(३४) खृहे देवालये वापि सङ्कीर्णं यत्र दृश्यते । तत्र कार्यं
मण्डपज्ञैः संश्लिष्टं मण्डपद्वयम् ॥

(३५) मण्डपार्थं द्वादशाङ्गुलोच्चं स्थलं कुर्यात् । स्थलादर्काङ्गु-
लोच्छ्रायं मंडपस्थलमीरितमिति सिद्धान्तशेखरात् । महाकपिल-
पाच्चरात्रे तु हस्तोच्चमुक्तम् । उच्छ्राये हस्तमात्रस्यात्सुसमं च सुशो-
भनमिति । भाट्टैतु जलाशयोत्सर्गविधौ उच्चितं विनैव सुसमभूमौ
मण्डपरचनोक्ता । मात्स्यादावुच्छ्रेतरनुकृत्वादिति तदाशयः । अतो
मण्डपभूम्युच्छ्रेते: कृताकृतमिति प्रतिष्ठेन्दौ ।

(३६) पञ्चरात्रे—मण्डपाः कर्मषु प्रक्तो अल्पामध्यात्योक्तमाः ।
यथा देशं यथाकालं प्रयोज्यास्ते विचक्षणैः ॥

(३७) परशुरामकारिकायाम्—अथवा सप्तहस्ता ये रोपणीया
निजेच्छया । क्वचिच्चतु बाह्यस्तम्भाः सप्तहस्ता—इत्युक्तं अस्मिन्पक्षे
निखननं अनियतं च स्तम्भपञ्चमांशमित्यपि तत्रैव रुद्रकल्पद्रुमे । मध्य-
स्तम्भाः—अष्टहस्ता नवहस्ता वा भवन्तीत्यपि रुद्रकल्पद्रुमे ॥

(३८) खनेऽवटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरे । शारदाति० ।
आग्नेयवटक्रमेण सर्वेष्ववटेषु सूत्रसंपातस्थानाद् वहिः ‘स्तंभा निखेया’
इति नारायणभट्टकमलाकरभट्टादयो बहवः । स्तम्भपरिमाणाह—
‘एते स्तम्भाः सूत्रसम्पातस्थशङ्कुसंलग्नावाह्यदेशे निखेया । तुलादौ
वेदिकोणेष्वमुक्तवदेश्वतुरस्त्रां समां तथेति क्रियासारदौचतुरस्त्वोकर्म-
व्यातम्भास्तावत्सूत्रसंपातशङ्कुना वहिः सिद्धाः । अन्यथा चतुरस्त्व-
भङ्गापातात् । इति कोटिहोमपद्धतिः ।

(३९) पञ्चमांशं खनेद् भूमौ सर्वसाधारणो विधिः ।

(४०) स्तम्भानां स्थूलतात्वनुकृत्वाद्यथेच्छमिति केचित् । दशा-
ङ्गुलप्रमाणम् - तोरणस्तंभस्थैल्यमेवात्र ग्राह्यमेकत्र दृष्टत्याज्या-
दित्यन्ये । दशाङ्गुलप्रमाणेन तत्परीणाह उरीत । इति शारदा० ।

परिणाहो विशालता । ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रकारेण चैकत्रिशद्गुलपरि-
धिसूत्रेण स्थूलता ज्ञेयेति । अत्रोत्तमाधममंडपेन व्यवस्था ज्ञेयेति
मम प्रतिभाति ।

(४१) गोविन्दार्चनचन्द्रिकायाम्—मंडपोपरि बघ्नीयादतिश्वेरं
वितानकम् । अलं कुर्यांत्पुष्पमालादिभिरेनं तु वेष्टयेत् । अंशैः समुन्नतां
वाऽपि तारतम्यं विलोक्य च । सामग्रचादेः समावेशो यथा स्यादिति
मण्डपः ।

(४१) अलङ्कारणासम्भवे-पुष्पमालापल्लवैर्वा मण्डपालङ्कारोऽवश्यं
सम्पादनीयः । रुद्रकल्पद्रुम् ।

यहपीठ तथा कुण्ड आदि का
विविध प्रकार



सूर्यपीठः—

(जहाँ की आकृति बनाने का प्रकार)

एक अंगुल, सात यव और छः यूकाको प्रकालसे नापकर मध्यसे वृत्त बनावे तो द्वादशांगुलात्मक सूर्यका क्षेत्रफल होगा । १ अङ्गुल, ७ यव, ५ यूका और ४ लिक्षा का वृत्त बतावे । यह लघुपीठमाला का मत है ।

(१) लघुपीठमालायम्—सूर्यस्याकङ्गुलं वृत्तमेकादीषुचतुः कृतम् । तद्व व्यासार्धं तेन सम्यक् जायते नेत्रसुन्दरम् ॥१॥ एक १ अद्वि ७ इष्ट ५ चतुः ४ भिः क्रमेण अंगुल-लिक्षाभिव्यासादर्धम् । तद्विगुणो व्यासः ३।७। चान्द्रं सिद्धाङ्गुलं वेदकोणं वेदाद्रिपक्षयुक् ॥२॥ वेद ४ आद्रि ७ पक्ष २ क्रमेणाङ्गुलादिभिः इदं कोटिमानं भुजमानं च । भीमस्याब्धिफलं त्र्यसं त्रिखान्तुविराहतम् ॥३॥ त्रि ३ ख ० शन्य अम्बुदम् ४ श्रत्वारोङ्गुलाद्याः, तै अ द्वं भीमस्य चतुरङ्गुलं फलं त्रिकोणं पीठं त्रिकोणे त्रयो भुजाः समप्रमाणाः । तत्रावस्तना भूमिः उपरितनौ भुजौ तन्मानं ३ । ० । १ । चतुर्यवान्तरं वेदाङ्गुलं स्यात् भु द्वयम् ऊर्ध्वाधिस्तद्वयद्विश्च प्रत्येकं स्याच्चतुर्यवा । भूमिः षड्यवेदाभ्यां भुजाभ्यां षट्त्रिकोणकम् तद्वृत्तं बाणसमयं बुधपीटं प्रवक्षते ॥४॥ तर्काङ्गुलं गुरोः पीठं दस्त्रानलभुजद्वयम् ॥५॥ दस्त्री द्वयङ्गुलो द्वी भुजौ अनली व्यङ्गुलो द्वी भुजौ कोटिसंज्ञत्रैकभुजे-ककोट्यौर्वातः फलं षड्गुलं गुरुपीठम् ॥ शुक्रस्य पीठपञ्च सं कु न गेषु भिः व्यासेन वृत्ते पूवादिसमाज्याः पद मन्धगा । प्रावृच्छते बाह्यतो वृत्ते नवाङ्गुलफल मत् ॥६॥ वेदा विष वेदा विष भूमधनुः पीटं शनेभ्रंमात् मध्यस्थनतुरस्य मानहीनात् षड्गुलम् । चतुरस्ते त्वपते चतुर्धनुः एकं धनुः फलं तत्र ग्राह्यं हात्वा घनुस्त्रिम् ॥७॥

वेदाङ्गुलेर्वेदकोणे पूर्वतो रेखयोरिह तिर्यग् ह्यग्न्यम्भोविवृद्धिरघो बाह्यधरानतः । वृत्तेद्वे राहुपोठं स्याच्छूर्पं सिष्ठवाङ्गुलं शुभम् ॥८॥ प्रथमत

चन्द्रपीठ-

चार अङ्गुल, सात यव और दो यूका का गज लेकर पूर्वकी तरफ एक लम्बी सीधी रेखा दे। उत्तरी ही दक्षिण दिशा की तरफ, उत्तर की तरफ तथा पश्चिम दिशा की तरफ देने से चतुरस्सपीठ बन जाता है।

एकं चतुरसं तत्र भुजमानं ४ । ० । ० । तदेव कोटिमानं ४०००। यत्र पूर्वयो रेखयोः तिर्यग् दक्षिणोत्तर द्वि २ अग्नयः त्रयः अंभोवयः ४ दक्षिणे अर्धम् १११६। उत्तरे अर्धम्—१११६। अंगुलयवयूकानां वृद्धिः । अघो भूमेरर्धं कृत्वा वृत्तद्वयं कार्यम् । चोपरिशूमः ६३४ अघोभूमिः ४०००। अघोवृत्तव्यासाध्यम्—१०००। तद्विगुणो व्यासः २०००। पूर्वपिरो गतौ बाहू-कोटिरद्वाङ्गुला भवेत् ऊर्ध्वमेकाङ्गुलं हित्वा-हित्वा चाघः शरागुलम् । चतुरेकाङ्गुलयवं लग्नास्यं व्यस्तभारभ केतोधर्वजाभं कुण्डं स्याद् गजा-गुड्लमितं शुभम् ॥९॥ यावा भूमिः सप्तविंशाङ्गुलाब्धिं यावावृत्ताद्वाद्वा-वृत्ताऽन्यातियेः स्यात् । त्रयोविशस्तत्र लम्बाङ्गुलश्च राहोः शूर्पे कुण्डमेत द्विचित्रम् ॥ प्रकारान्तरप्रक्षः—सिद्धाङ्गुलो भवैललम्बः पश्चाद् भूमिन्न-खाङ्गुला । पूर्वाऽविशतिः प्रोक्ता शूर्पे स्यात् ऋजुकोणके ॥ इत्यनेन पश्चाद् वृत्तं नास्तीति ध्वानितम् ।

संग्रहाङ्गे साघरामेण चापेत्तज्यहिः स्याद् वृत्तपादो दिगंकात् ।

सूत्राद्रोद्राद्वाह्यमौर्वर्हमेवं वृत्तं दद्याज्ज्यास्पृगेवं पराद्वर्षम् ॥

इषुवेदमितेन दीर्घदोष्णा गजदोष्णा लघुतापि च त्रिषष्ठिः ।

जिनलम्बगणेन वार्द्धषट्टिं भुप्रचार्धात्पूवदन्ति केतुकुण्डम् ॥

एकेन युग्मत्रिभिरङ्गुलीभिः परेण धृत्या च मिलेन दोष्णा ।

सुदीर्घवेदास्मुशन्तिकुण्डं निगद्यतेऽथो छिविधं शराभम् ॥

नोट—देखिये—विशेष निर्णयसिन्धु-सटीक कृष्णभट्टी पृ० १०९।

और लिखित ऋहषीठमाला की टीका की ।

रूपनारायण मत से— ३ अङ्गुल, ७ यव, २ यूका और ४ लिक्षाका एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तके ठीक मध्यसे दक्षिणोत्तर ७ अङ्गुल, छः यव और ५ यूका की एक लम्बी रेखा दे। ऐसा करने से दो वृत्तार्ध होंगे। उसमें से पश्चिम हिस्सेके वृत्तार्धको मिटा देने से चौथीस अङ्गुलात्मक अर्धचन्द्र हो जायगा।

मंगलपीठ-

तीन अङ्गुल और चार यूकाको गजसे नापकर उत्तर की तरफ एक सीधी रेखा दे। उस रेखाके अन्तिम सिरोंसे अर्थात् दोनों कोर्नें से अलग अलग एक एक टेढ़ी रेखा उत्तरी देनेसे मंगलपीठ बन जाता है या एक यूका, ५ यव और दो अङ्गुल लम्बी दक्षिणाग्र रेखा दे। (दक्षिणाग्र या उत्तराग्रकरे—यह संस्काररत्नमालाका मत है।

मंगलपीठ का दूसरा प्रकार— ३ अंगुल ४ यव और छः यूका की एक लम्बी रेखा उत्तरदिशा की तरफ दे। तदनन्तर वायव्यकोणसे एक टेढ़ी रेखा २ अंगुल, ४ यव और छः यूका की ठीक दक्षिण दिशामें दे। वैसे ही ईशानकोणसे जो रेखा दे वह भी दक्षिण दिशावाली रेखा में मिलानेसे त्रिकोणपीठ बनेगा।

बुधपीठ-

मध्यसे चार यव छोड़कर एक रेखा दक्षिणसे उत्तरकी तरफ चार अंगुल की लम्बी सीधी दे। वैसे ही चार अंगुल की मध्यरेखासे ४ यव छोड़कर उत्तरसे दक्षिणकी तरफ दे। तदनन्तर उत्तरदिशा की तरफ वाली रेखा के अन्तिमसिरेसे दो यव पूर्व दिशाकी तरफ और दो यव पश्चिम दिशाकी तरफ बढ़ा दे। वैसे ही नीचे दक्षिणदिशाका दोनों रेखाओंको दक्षिणकी तरफ बढ़ा दे। फिर पूर्वदिशा में बढ़ी २ यव वाली रेखाके अन्तिम सिरेसे दो अंगुल छः यव की एक रेखा टेढ़ी दे जो उत्तरमें मिले। वैसे ही पश्चिमकी तरफसे रेखा दे। ऐसा करनेसे बुधपीठ बन जाता है।

रूपनारायण सत से— एक अंगुल, सात यव और छः यूका का एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्त के ठीक मध्य में एक लम्बी रेखा दक्षिणोत्तर दे। फिर उस आधे दो वृत्तों में से एक आधे वृत्तको मिटा देनेसे षड्डंगुलात्मक बुधपीठ बन जाता है।

गुरुपीठ—

दो अंगुल चार यव और दो यूकाका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तमें चार अंगुल, चार यूका तथा दो लिक्षाका दूसरा वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तमें बराबर-बराबर के सालह चिह्न कर विदिशाके पाँचवे चिह्नसे प्रारंभकर आठ पत्र बनाने से नव अंगुलात्मक पद्माकार आकृति वाला गुरुपीठ बन जाता है।

रूपनारायणमतसे— मध्य से दो अंगुल की दक्षिणदिशाकी तरह एक सीधी रेखा करे तदनन्तर पूर्व और पश्चिम की तरफ तीन-तीन अंगुलकी सीधी रेखा दे। फिर उत्तरदिशा की तरफ दो अंगुल की रेखा द। ऐसा करनेसे दीर्घ चतुरस्त गुरुपीठ बन जाता है।

शुक्रपीठ—

प्रकारान्तर— एक अंगुल, सात यव और पाँच यूका का एक वृत्त बनाकर उस वृत्तमें पूर्वदिशासे दो अंगुल, दो यव और तीन यूका पर चिह्न करनेसे पंचकोणात्मक शुक्रपीठ बन जाता है।

रूपनारायणमतसे— तीन अंगुल, एक यव, दो यूका और चार लिक्षा को प्रकार से पूर्वदिशा, पश्चिम और उत्तरदिशासे नाप कर बनानेसे भनुष्कोण (चारकोनवाला) शुक्रपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तर— छः यूका छः यव और दो अंगुलके ग्राकालसे नापकर एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तके पूर्वदिशासे तीन अंगुल २ यव और छः यूका पर एक चिह्न करे। अर्थात्—कुल ५ चिह्न करे। फिर फी १ चिह्न से एक चिह्न छोड़कर तीसरे चिह्न पर जो रेखा हो

जायगी उस रेखा का नाप २ यूका, तीन यव और ५ अंगुल परिमित होगा। उसे बाहू कहते हैं। इसी तरह की ४ रेखा (बाहु) और दे। तदनन्तर कोणोंको छोड़कर बाहुओं और वृत्तको मिटानेसे पंचकोणात्मक शुक्रपीठ बन जायगा।

प्रकारान्तर पक्षसे— एक अंगुल ७ यव और पाँच यूकाका एक वृत्त बनाकर उस वृत्तसे बराबर के पाँचभाग करने से शुक्रपीठ बन जाता है। यह पक्ष लघुपीठमालाका है।

शनिपीठ—

चार अंगुल, चार यव, चार यूका और चार लिक्षाका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके ठीक मध्यसे एक जीवा अर्थात् लम्बी रेखा छः अंगुल, तीन यव और ५ यूका की (या ६। ६। ५) देने से धनुषाकार पीठ बन जाता।

अथवा—छः अंगुल ३ यव और ५ यूका की दक्षिणोत्तर एक जीवा-रेखा दे। तदनन्तर ७ अंगुल, १ यव और तीन यूका के नापकी रस्सी या प्रकाल द्वारा नापनेसे धनुषाकार शनिपीठ हो जाता है। या—७। १। ३। की दक्षिणोत्तररेखा दे। तदनन्तर ६। ३। ५ की देने से धनुषाकार शनिपीठ बन जाता है।

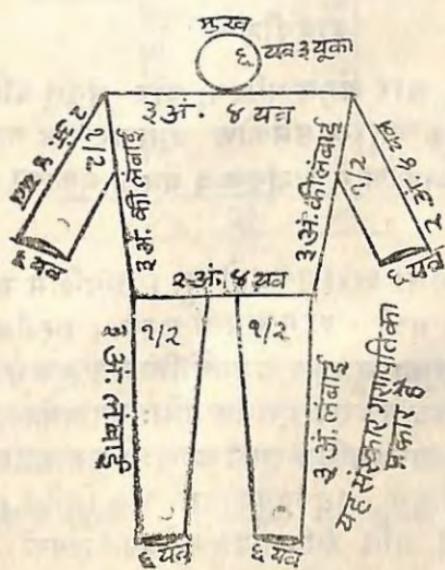
अथवा—छः यूका ५ यव और दो अंगुल का वृत्त बनाकर वृत्त के ठीक मध्यसे छः यूका ५ यव और तीन अंगुल की एक लम्बी रेखा देनेसे शनिपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तर पक्षसे—२ अंगुल, ५ यव, ४ यूका और ४ बालाग्रका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके भीतर ठीक मध्यमें—३ अंगुल, ६ यव और ४ यूका के परिमाणसे ज्या देनेसे शनिपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तरपक्षसे— एक वृत्त ४ अंगुल, ४ यूका और ४ लिक्षाका बनाकर उस वृत्तमें एक चतुरस्र बनावे। (उस चतुरस्र की भुजा ६। ३। ५

होगी और कोटी भी ६। ३। ५ होगी । अर्थात्—बराबर का चतुरस्र बनेगा । तदनन्तर वृत्त में जो चतुरस्र बना है । उस चतुरस्र से बाहर और वृत्त के भोतर पूर्वदिशा, दक्षिणदिशा और उत्तरदिशा में जो जगह निकलती है उन जगहों को (अर्थात्—वृत्त के सहित जगहों को चतुरस्र की तीन रेखाओं को मिटाने के घनुषाकार पीठ बन जायगा ।

(शनि पीठ)



अथवा—२ अंगुल की भुजा और तीन अंगुल की कोटी बना कर शनिपीठ बन सकता है । यह लघुपीठमाला का मत है ।

प्रकारान्तर—(१) मुख का व्यास छः यव तीन यूका होगा। अर्थात् छः यव और तीन यका का एक गोलाकार वृत्त बनावे। उसी में आंख, कान आदि बनावे। (२) तदनन्तर दक्षिणोत्तर लम्बी रेखा तीन अंगुल और चार यव की करे। उसीको पूर्वका भू बहते हैं। (३) फिर मध्य की लम्बाई तीन अंगुल की होती हुई अन्त में सकरी होगी। (४) कन्धे की चौड़ाई एक अंगुल और दो यव की होगी। (५) हाथ की लम्बाई सबा दो अंगुलकी होगी। (६) कटीभागकी लम्बाई दक्षिणोत्तर दो अंगुल चार यवकी होगी। (७) जांघकी एक अंगुल दो यवकी होगी। (८) चरणकी लम्बाई तीन अंगुल की होगी। (९) चरणका भाग ६ यव का होगा।

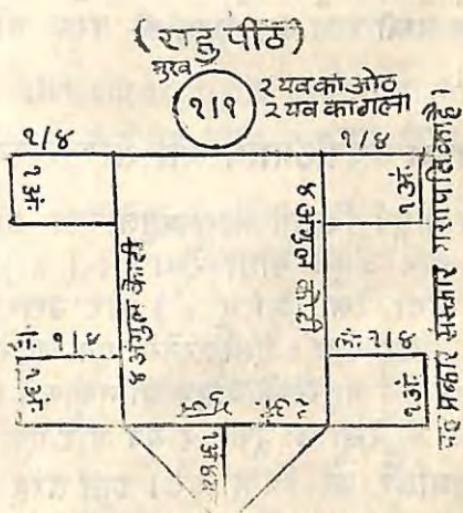
राहुपीठ-

चार अंगुल पूर्व, चार अंगुल पश्चिम, चार अंगुल दक्षिण और चार अंगुल उत्तर रेखा एक चतुरस्र समकोण बनाकर उस चतुरस्र के बाहर ईशानकोण और अग्निकोण में २ अंगुल ३ यव ४ यूकाका आधा १। १५।

१. साध्वत्राङ्गुलमिता ३। ४। पूर्वभागे भूः। तत्पश्चिमे भागे साध्वाङ्गुल-द्वयमित २। ४ मुखम्। मध्ये—छांगुलमितो लम्बः। तत्पश्चिमभागे चरणो कार्यो। सपादमेकाङ्गुला भूः १। २ षड्यवोन्मितं ६ मुखम्। व्याङ्गुलमिती लम्बः ३। एतादशो दक्षिणचरणः। तथैव वामः सपादमेकाङ्गुला १। २ भूः। षड्यवोन्मितं मुखम्, साध्वांश्वमिताङ्गुलो लम्बः। एतादशो दक्षिणहस्तः। तथैव वामः। तत्पूर्वभागे षड्यवयूकात्रय ६। ३ मितेन। कर्कटेन वृत्तां तच्छरः। ८वं कृते सति द्वाविशत्यङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं २२ नरकृतिः शनिमण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) उदरक्षेत्रफल ९ अंगुल। (ख) मुख का क्षेत्रफल २ (ग) चरण का क्षेत्रफल ६ अंगुल। (घ) हाथ का क्षेत्रफल ५ अङ्गुल। कुल क्षेत्रफल जोड़ में २२ होगा।

दक्षिण दिशाकी तरफ और १११६। उत्तर दिशा की तरफ बढ़ा दे। तदनन्तर बढ़े हुए भागोंसे क्रमसे एक एक टेढ़ी रेखा वहाँसे नैऋत्यकोणमें और एक टेढ़ी रेखा वायव्यकोणमें बढ़ा दे। फिर उस चतुरस्र का नीचे की पश्चिम की) तरफ दो भाग कर (अर्थात् दो दो अंगुल पर मध्यकर)



उनमें दो वृत्ताधं अलग २ बनावे। वृत्तका व्यासाधं १०१० होगा अलग अलग, अर्थात्-प्रथम भाग में एक वृत्ताधं दूसरे भाग में दूसरा वृत्ताधं बनाकर भीतर का चतुरस्र मिटादेनेसे शूर्पाकाश पीठ होता है।

*प्रकारान्तर पक्षसे—(१) मुख एक अंगुल यवाधिक व्यासाधं से

१. तत्र उदरे अङ्गुलत्रयमित भुजः। अङ्गुल चतुष्टमिता कोटिः। उच्च-भार्गो पाश्वयोः साद्वाङ्गुलदीर्घो एकाङ्गुलविस्तृती द्वो करी। तावन्मितावधो भागे पाश्वयोद्वीं चरणौ। यवाधिकैकाङ्गुलव्यासाधेन कृतं मण्डलं मुखम्। मुखोदरयोर्मध्ये यवद्वयमितश्चतुरस्रो गलः। मुखादग्रे यवद्वयेनोष्ठी पुच्छे

एक वृत्त बनावे। मुख और उदर मध्यमें दो यवका एक चतुरस्त्र चारों तरफ से गला होगा। मुखके आगे दो यवका ओष्ठ रहेगा। (२) तीन अङ्गुल की भुजा रहेगी। (३) हाथ की चौड़ाई एक अङ्गुल चार यवकी होगी। (४) कोटी चार अङ्गुल की होगी। (५) नीचे पूछ ठीक मध्य में (अर्थात्-पुच्छे त्रिभुजे अङ्गुलत्रयमिता भूमिः) त्रिभुज करने पर ठीक मध्य से एक लम्बी रेखा उत्तरदिशा की तरफ जो होगी वह तीन अङ्गुल की होगी।

प्रकारान्तरपक्ष लघुपीठमाला और संस्काररत्नमालासे—

(१) मध्य से पूर्व दिशामें चार अंगुल रेखा सीधी दे। (२) दक्षिणदिशासे—चार अंगुल सीधी रेखा दे। (३) पश्चिमदिशामें चार अंगुलकी सीधी रेखा दे। (४) और उत्तरदिशा में—चार अंगुलकी सीधी रेखा देना। ऐसाकरनेसे एक चतुरस्त्र तय्यार हो जायगा। तदनन्तर उस चतुरस्त्रके बाहर अग्निकोणमें दक्षिणकी तरफ एक सीधी रेखा दे जो रेखा छः यूका, १ यव और एक अंगुल की हो। उस रेखाके अन्तिमसिरे पर चिन्ह करे। इसी तरह उत्तर की तरह (ईशानकोणमें) छः यूका, १ यव एक अंगुलकी सीधी रेखा बढ़ा दे। फिर नैऋत्यकोणसे एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा (अग्निकोण) में बढ़े हुए भागके अन्तिमचिन्ह पर मिले। वैसे ही-वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो उत्तरदिशा में (ईशानकोण) में बढ़े हुए भाग के अन्तिमसिरे में मिले।

त्रिभुजे अङ्गुलत्रयमिता भूमिः । सार्घाङ्गुलो लम्बः । एवं कृते पञ्चविंशत्य-
ङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं मकराकृति राहुमण्डलं भवति ।

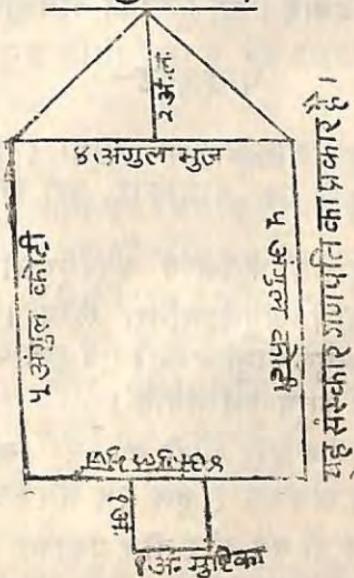
क्षेत्रफल—(क) भुज और कोटी का क्षेत्रफल १२ अङ्गुल । (ख) मुख का क्षेत्रफल ४ अङ्गुल । (ग) ओष्ठ और गले का—एक अङ्गुल । (घ) हाथ और चरण का क्षेत्रफल ६ अङ्गुल । कुल जोड़ २५ क्षेत्रफल होगा ।

तदनन्तर—उस चतुरस्र के नीचे के हिस्सेमें (अर्थात्-वायव्य और नैऋत्यवाले में) अर्थात् पश्चिमदिशामें उस चतुरस्रका दो दो अंगुल का मध्यसे एक अंगुल के व्यासार्ध पर चिह्न करे । ऐसा करने पर प्रकाल द्वारा अलग-अलग दो वृत्त बनावे । फिर चतुरस्र के भीतर का अर्धवृत्त और चतुरस्र मिटानेसे शूर्पकारका बनेगा ।

केतुपीठ—

पूर्वदिशासे पश्चिमदिशा में एक लम्बी रेखा आठ अंगुलकी दे । तदनन्तर पूर्वदिशा से चार यव अर्थात्—आधा अंगुल हटाकर दूसरी

(केतुपीठ -)



लम्बीरेखा उस रेखासे हटाकर दक्षिण दिशाकी तरफ दे । फिर पश्चिम दिशासे दक्षिणवाली रेखासे अधोभागसे पाँच अंगुल पर चिह्न करे और पूर्वदिशासे अर्थात्—ऊपर से एक अंगुल छोड़कर उसी रेखा पर

चिह्न करे । एक अंगुलसे एक सीधी रेखा चार अंगुल, एक यव की दक्षिण तरफ वैसे ही पाँचवें भागसे दूसरी रेखा टेढ़ी दे जो ऊपर वाली रेखा ४ अंगुल और १ यव में मिले । ऐसा करनेसे मध्यवाली रेखा होगी । इससे केतुपीठ बन जाता है ।

प्रकारान्तर पक्षसे—(१) कोटी पाँच अंगुल लंबी । (२) खज्ज का त्रिकोणलंबाई दो अंगुल (३) भुजा चार अंगुल की । (४) सम चतुरस्त्र एक अंगुल की मध्य में मुष्ठिका ।

सूर्यकुण्ड-

२७ अंगुल ६: यूकाके आधेको प्रकाल द्वारा नापकर मध्य विन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे । इस कुण्डका नाम सूर्यकुण्ड होता है ।

‘चन्द्रकुण्ड-

३३ अंगुल ७ यव और ४ यूका आधा १६।६।५। को प्रकालसे नापकर मध्य विन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे । तदनन्तर उस

(१) तत्र खज्जाकृतौ फलकस्य चतुरड्गुलो भुजः । पञ्चड्गुला कोटिः । खज्जाग्रत्रिकोणे अंगुलद्वयमित्त लम्बः । चतुरड्गुला भूमिः । उपरि समचतुरस्त्रा अंगुलैकामुष्ठिका । एवं कृते पञ्चाविशत्यड्गुलक्षेत्रफलात्मकं खज्जाकृति केतुमण्डलं भवति ।

क्षेत्रफल—(क) भुज और कोटी का २० (ख) त्रिभुज का क्षेत्रफल ४ (ग) मुष्ठिका क्षेत्रफल १ कुल २५ क्षेत्रफल हुआ ।

(१) ३८ अंगुल दो यव और तीन यूकाका आधा कर प्रकालसे नापकर मध्य विन्दुमें एक गोलाकार वृत्त करे । उस वृत्तमें दिक् साधनार्थ पूर्वदिशा (मुख) से एक लंबी लकीर दे जो पश्चिम (पुच्छ) दिशामें मिले । तदनन्तर उत्तर दिशा (वामपाश्व)से एक लकीर लंबी दे जो दक्षिणदिशा (दक्षपाश्व) में जाकर मिले । फिर दक्षिणसे उत्तर-

वृत्तसे (क) ईशानकोण से एक सीधी रेखा दे जो अग्निकोणमें मिले । (ख) अग्निकोणसे एक सीधी रेखा दे जो नैऋत्यकोणमें मिले । (ग) नैऋत्यकोणसे एक सीधी रेखा दे जो वायव्यकोणमें मिले । (घ) वायव्यकोणसे एक सीधी रेखा दे जो ईशानकोणमें मिले । ऐसा करने से वृत्तके भीतर एक चतुरस्त बनेगा उस चतुरस्त को चन्द्रकुण्डसे कहा जाता है ।

मंगलकुण्ड—

४२ अंगुल तथा १ यव का आधा कर प्रकाल द्वारा मध्य बिन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे । तदनन्तर पूर्व दिशा (मुख) से एक सीधी रेखा दे जो पश्चिम दिशा (पुच्छ) में मिले । फिर दक्षिण-दिशा (दक्षपाश्व) एक सीधी रेखा दे जो उत्तरदिशा (वालपाश्व)

वाली जो रेखा (लकीर) दिक्साधनके लिये दी है उस लकीरका चार भाग कर उसके चतुर्थ भाग पर (अर्थात् तीसरे चिह्न पर) प्रकाल को रख उत्तरदिशासे दूसरा वृत्त की तरह बनावे । (यह ध्यान रखें की दूसरे वृत्त की रेखा पुच्छ, पश्चिम दिशा) और मुख (पूर्वदिशा की रेखाको स्पर्श करती आ रही है या नहीं) तदनन्तर तीसरे चिह्न से एक सीधी रेखा पूर्वदिशा और पश्चिमदिशा की तरफ देनेसे अर्धचन्द्र (चन्द्रसा) कुण्ड बन जाता है । तात्पर्य यह है कि—यहाँ पर जो दो वृत्त बनाये गये हैं उस दूसरे वृत्त से ही अर्धचन्द्र बनेगा । प्रथम वृत्तके मध्यसे नहीं बनेगा ।

अथवा—एक कुण्डपक्ष में वृत्तका दिक्साधन कर उस वृत्त में दो चिह्न और करनेसे चार भाग होंगे । उसके तीसरे चिह्नसे पूर्वदिशाकी तरफ दूसरा वृत्त बनावे । तदनन्तर तीसरे चिह्न से ही दक्षिणोत्तर एक सीधी रेखादेनेसे अर्धचन्द्रकुण्ड बन जाता है ।

में मिले । वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिणदिशा में मिले । ईशानकोण से एक टेढ़ी रेखा दे दक्षिणदिशा में मिले । ऐसा करने से त्रिकोणकुण्ड बन जाता है ।

अथवा—नैऋत्यकोण से एक सीधी रेखा दे जो वायव्यकोण में मिले । नैऋत्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो उत्तरदिशा में मिले । वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे, जो उत्तरदिशामें मिले । ऐसा करनेसे त्रिकोणकुण्ड बन जाता है ।

बुधकुण्ड का प्रथमप्रकार—

मध्य विन्दु से चार अंगुल हटाकर दक्षिणदिशा की तरफ एक रेखा सीधी ३६ अंगुल की दे । (अर्थात् मध्य विन्दु से चार अंगुल इधर और १८ अंगुल उधर रेखा देने से ३६ अंगुल होगा) वैसे ही मध्य विन्दु से चार अंगुल हटाकर उत्तरदिशा की तरफ एक रेखा सीधी दे जो ३६ अंगुल की होगी ।

तदनन्तर—दोनों रेखाओं की समाप्ति पर उत्तरदिशा की और एक रेखा पूर्वसे पश्चिमदिशाकी तरफ दे जिसका नाप २४ अंगुल होगा ।

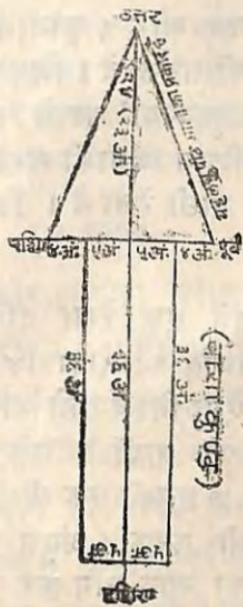
(तात्पर्य यह है कि २४ अंगुल की जो रेखा दी जायगी उस रेखा का आधा १२ अंगुल होगा । उस बाहर अंगुल के मध्य विन्दु वाली रेखा के अन्तिम सिरे पर रखने पर पूर्वदिशा की तरफ १२ अंगुल रेखा का नाप होगा और पश्चिमदिशा की तरफ भी १२ अंगुल रेखा का नाप होगा । यो निश्चयात्मक हो जाने पर मध्य विन्दु से अंगुल हटाकर दक्षिण दिशा की तरफ जो ३६ अंगुलात्मक रेखा दी है और ४ अंगुल हटाकर उत्तर दिशा की तरफ जो रेखा दी है उन रेखाओं के मध्य में चार २ अंगुल और आजायगा । ऐसी स्थिति में दोनों छोर में अलग अलग आठ अड्डगुल बचेगा ।) इसी प्रकार अन्य प्रकारों में व्यवस्था समझ लेती चाहिये) फिर मध्यविन्दुमें एक सीधी

दे जो दोनों रेखाओंके बराबरके नापकी हो । इस तरह कुल लंबी ३६ अंगुलात्मक तीन रेखा हुई ऐसा पूर्ण ज्ञानहोनेपर मध्यवाली रेखा के अन्तिमसिरेसे एक रेखा सीधी उत्तर दिशाकी तरफ २४ अंगुलकी दे ।

तदनन्तर—पूर्वदिशासे पश्चिमदिशावाली रेखा के दोनों कोनेसे एक एक टेढ़ी रेखा दे जो कि उत्तरदिशामें जाकर मिले ऐसा करनेसे बाण कुण्ड बन जाता है ।

द्वितीयप्रकार—

मध्य विन्दुसे ५ अंगुल दक्षिण दिशाकी तरफ हटाकर एक सीधी रेखा दे जो रेखा ३६ अंगुलात्मक होगी । तद्वत् मध्यविन्दू से ५ अंगुल



हटाकर उत्तरदिशाकी तरफ एक रेखा सीधी ३६ अंगुलात्मक दे । अर्थात्—मध्यविन्दुसे ५ अंगुल हटाकर पूर्वदिशाकी तरफ ३६ अंगुलकी

एक सीधी रेखा दे । तद्वत् मध्यविन्दुसे पश्चिमदिशाकी तरफ ५ अंगुल हटाकर ३६ अंगुलकी एक रेखा सीधी दे । तदनन्तर—उत्तरदिशाकी तरफ मध्य विन्दुव्वाली रेखाको २३ अंगुल या २४ अंगुल एक सीधी रेखा उत्तर दिशाकी तरफ बढ़ा दे । फिर उत्तरदिशाकी तरफ जहाँ ३६ अंगुलात्मक रेखायें समाप्त हो चुकी हैं वहाँसे पूर्वदिशासे पश्चिम दिशाकी तरफ १८ अंगुल की एक सीधी रेखा दे । फिर इस १८ अंगुलकी रेखा के दोनों ओर से एक एक टेढ़ी रेखा दे जो जो उत्तर दिशामें मिले । ऐसा करनेसे प्रकारान्तर बाणकुण्ड बनेगा ।

तृतीयप्रकार कुण्डरत्नावलीका-

५८ अंगुल और ७ यूका के आधे को प्रकाल से नापकर मध्य विन्दु से ४ अंगुल, ५ यव और ५ यूका हटाकर एक सीधी रेखा दक्षिणोत्तर (पूर्व दिशाकी तरफ) दे । जिसकी लंबाई ३८।३।५।१२।४ अंगुल होगी । जिसे 'दण्डवृहज्ज्या' शब्दसे कहसकते हैं । तद्वत्—मध्य विन्दुसे दक्षिणोत्तर (पश्चिम दिशाकी तरफ) ५ अंगुल, ५ यव और ७ यूका हटाकर एक सीधी रेखा दे । जिसका नाम ३८।५।१२।४ अंगुल होता है ।

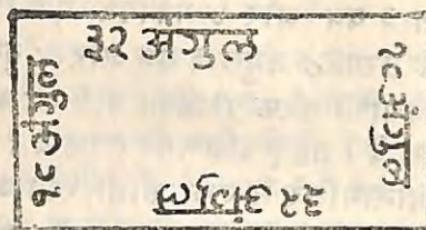
तदनन्तर मध्यविन्दुमें एक रेखा दक्षिणोत्तरदे जो रेखा पूर्व-रेखाओंके बराबर हो अर्थात् ३८।५।१।२।४ अंगुल की अर्थात् तीनों रेखायें बराबर की हुई ऐसा निश्चय हो जानेपर उत्तरदिशाकी तरफ मध्य रेखाकी समाप्ति पर वायीं तरफसे ८ अंगुल, ३ यव और ४ यूका की एक रेखा दे । ७ यवकी एक सीधी रेखा पूर्वसे पश्चिमकी तरफ दे । दूसरी दाहिनी तरफ ८ अंगुल ३ और ४ यूका की एक रेखा दे । (अर्थात्-वृत्तका आठ भाग कर पूर्व-मुख, अग्निकोण अंश (स्कन्ध) दक्षिणपार्श्व, नित्र्वृत्तिकोण-श्रोणी (कटी) पश्चिम—पुच्छ, वायव्यश्रोणी (कटी) उत्तरपार्श्व, ईशानअंश (स्कन्ध) तरफ—मुख (पूर्वदिशा) के समीप स्कन्धसे एक सीधी रेखादे जो पुच्छके

समीप श्रेणी (कटि) में मिले । उस रेखा का मध्य और मध्यविन्दुसे जो रेखाकी समाप्ति हुई है—मध्य एक होगा । इसके मध्यसे पूर्वदिशा की तरफ ८ अंगुल ३ यव और ४ यूकापर एक चिह्न करे । वैसे ही मध्य से पश्चिमकी तरफ ८ अंगुल ३ यव और ४ यूका पर चिह्न करे) फिर फिर उत्तरदिशाकी तरफ पार्श्वका बायें का आधा और दाहिनेके आधे पर एक रेखा दे । तद्वत् दक्षिणकी तरफ दे । फिर मध्य विन्दु-वाली रेखा के अन्तिमसिरे से एक सीधी रेखा जो उत्तर दिशा की तरफ जाय । जिसका नाम १४।७।४।७।२।४ है । यदि मध्यशर २।१।६।६।५७ को १५।७।४।७।२ से घटा दे तो उपरका हिस्सा रेखा का नाप हुआ । तदनन्तर दाहिनी तरफ (दक्षिण तरफ) पार्श्वका चार भाग करे । आदिके दो भाग छोड़कर मध्यके भाग अन्तिम सिरेसे दक्षिणदिवाली रेखाके अन्तिमसिरे से एक टेढ़ी रेखा जो मध्य के अष्टास्थियाके भीतर मध्यवाली रेखाके कोनेमें मिले । वैसे ही उत्तर वाली रेखा के अन्तिम सिरे से एक टेढ़ी रेखा दे । फिर मध्यकी वची रेखा मिटा दे और वृत्तादि मिटानेसे बाणकुण्ड बनेगा ।

गुरु कुण्ड-

३६ अंगुल, ३ यव और ७ यूका का आधा (१८।१।७।४) कर प्रकालले नापकर मध्य विन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे । तदनन्तर वृत्त के बराबर के चौबीस चिह्न कर ७ चिह्नको छोड़कर एक रेखा सीधी (पूर्वदिशाकी तरफ) दक्षिणोत्तर वृत्त के भीतर दे इस रेखा वृत्तके भीतर दे जिसका नाप ३।४।६।२।५। होगा । सात रेखा छोड़ कर (पश्चिमदिशाकी तरफ) दक्षिणोत्तर दे । फिर दोनों कोनोंको (जिसके मध्यमें तीन तीन रेखा रहेगी) रेखा द्वारा मिला दे । इन दो रेखाओं का नाप अलग १७ अंगुल, १ यव, ७ यूका और ४ लिक्षा होता है ।

(गुरु कुण्ड)



शहलघुपीठ मालाका प्रकार

तात्पर्य यह है कि—दक्षिणदिशा के समीप दक्षपाश्वर्वसे एक सीधी रेखादे जो उत्तरदिशाके समीप वामांश में मिले। जिसका नाप (३१।४।६।२।५) होगा। फिर दक्षश्रोणीसे एकरेखा सीधी देंगे जो वामपाश्वर्वमें मिलेगी। जिस रेखाका नाप (३१।४।६।२।५) होगा। जिसको 'वृहज्जा' से पुकारा जाता है। तदनन्तर वामपाश्वर्व एक सीधी रेखा देंगे, जो वामांशमें मिलेगी जिसका नाम १।८।१।७।४ होगा। जिसको 'लघुज्या' से कहा जाता है। फिर दक्षश्रोणीसे एक सीधी रेखा दें, जो दक्षपाश्वर्व में मिलेगी इस रेखाका नाम १।८।१।८।४ है। जिसे लोग 'लघुज्या' कहते हैं। ऐसा करनेसे आयत गुरुकुण्ड बन जाता है।

द्वितीय प्रकार—

जो रेखा ऊपर ३।४।६।२।५। की है। वह इस दूसरे प्रकार में ३२ अंगुलकी रहेगी जिसे 'वृहज्ज्या' शब्द से कहा जाता है। दूसरी रेखा जो ऊपर १।८।१।७।४। की कही है। वह यहाँ दूसरे प्रकार में १८ अंगुल की कही है। जिसे 'लघुज्या' शब्द से कह सकते हैं।

शुक्रकुण्ड-

३१ अंगुल और १ यवके आधे व्यासको प्रकालसे नापकर एक वृत्त गोलाकार बनाकर उस वृत्तके बराबर पाँच भाग कर (क) पूर्वदिशासे एक टेढ़ी रेखा दक्षपाश्वर्व में मिला दे । (ख) दक्षपाश्वर्वसे एक टेढ़ी रेखा नैऋत्यकोण में मिला दे । (ग) नैऋत्यकोण से एक सीधी रेखा वामश्रोणी में मिला दे । (घ) वामश्रोणीसे एक टेढ़ी वामांशमें मिला दे । (ङ) वामांशसे एक टेढ़ी रेखा पूर्वदिशावाली रेखा में मिला दे । ऐसा करने से 'पञ्चास कुण्ड' बन जाता है ।

द्वितीयप्रकार-

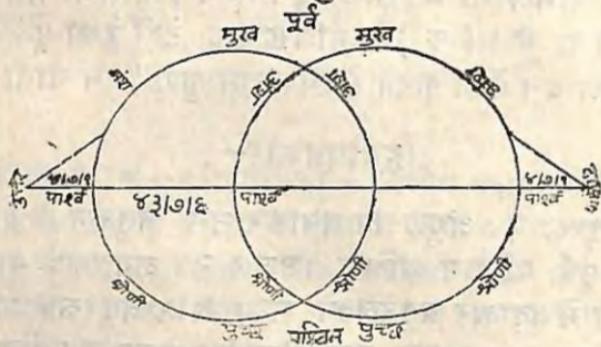
एक चतुरस्त्र २४ अंगुल का बनाकर उस चतुरस्त्र के बाहर चारों दिशाओं में पूर्व, पच्छाम, दक्षिण, उत्तर २४ अंगुलका सातवां भाग प्रत्येक दिशा में बढ़ाकर चतुरस्त्रको मध्य और चतुरस्त्रके बाहरके बढ़े हुए हिस्सेमें प्रकाल रख एक वृत्त गोलाकार बनाकर पूर्वोक्त व्यवस्था से ५ रेखा करने से पञ्चास कुण्ड बन जाता है ।

शनिकुण्ड-

मध्य केन्द्र से २९।२।५ के आधे से (१४।५।२।) से एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्त के दक्षपाश्वर्वको केन्द्र मानकर दक्षिणदिशा को केन्द्र मानकर प्रथम वृत्तके आधेसे प्रकाल घुमानेसे अर्थात् प्रथमवृत्तके मध्यमें पिंवरिन रखे दक्षिण दिशामें प्रकालका शंकु रखकर घुमा देनेसे दूसरा वृत्त बनेगा । तात्पर्य यह है कि दूसरे वृत्तके आधे में चला जायगा । फिर उन दोनों वृत्तोंमें ज्या दक्षिणोत्तर मध्य से दे । तदनन्तर दोनों वृत्तोंके बाहर मध्य हिस्सेसे ४ अंगुल, ७ यव और १ यूका बायीं तरफ और ४ अंगुल, ७ यव और १ यूका दाहिनी तरफर बढ़ा दे । इस पूर्ण रेखाका नाप ५३।५।७ होगा और केवल दोनों तरफ का मिलाकर षष्ठांश ९।६।१ होगा अर्थात्

५३। ५। ७। ६। १ घटादेंगे तो भीतर वृत्तोंकी ज्याका नाप ४३। ७। ६ होगा। फिर वायें वृत्तके आठ भाग बराबर बराबर के करे। (१) पूर्वदिशाको मुख कहें। (२) अग्निकोणको ड्गुश (स्कन्ध) कहे। (३) दक्षिणदिशाको पाश्व कहें। (४)

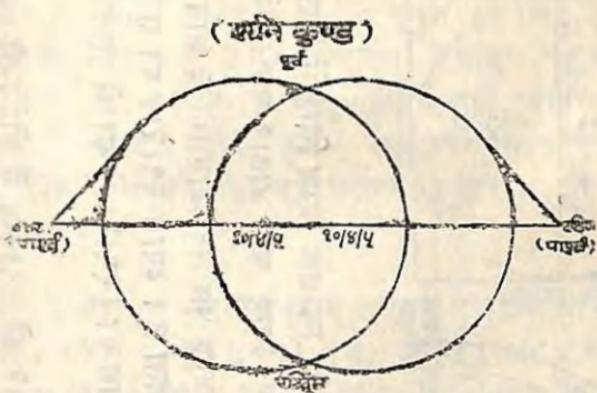
(शानि कुण्ड)



निर्द्दितिकोणको श्रोणी कहे। (५) पश्चिमदिशाको पुच्छ कहे। वायव्यकोणको श्रोणी (कटी) कहे। (६) उत्तरदिशाको पाश्व कहे। ईशानको ड्गुश (स्कन्ध) कहे। इसी प्रकार दाहिने वृत्त में भी आठ भाग की कल्पना करे।

तदनन्तर—वायें पाश्वमें बड़ो रेखा (४३। १) के अन्तिमसिरेसे एक टेढ़ी रेखा दे जो अंश और पाश्वका जो मध्य है उसमें मिले। वैसे ही दाहिने तरफ रेखा (५। ७। १) के अन्तिमसिरेसे अंश और पाश्वका जो मध्य रेखामें मिला दे। फिर कारीगरसे कहकर कुण्ड रत्नावली के नक्शे (सिद्धरूप को) को दिखाकर उपरी भाग में अर्थात् पाश्व और ड्गुश के मध्य में जो रेखा टेढ़ी दी है, वहाँ से धनुष्य के रूपको कुछ उठा दे और दूसरी तरफ वृत्त के ऊपरी भाग से स्कन्ध और पाश्वके मध्यवाली टेढ़ी रेखा से धनुषका आकार

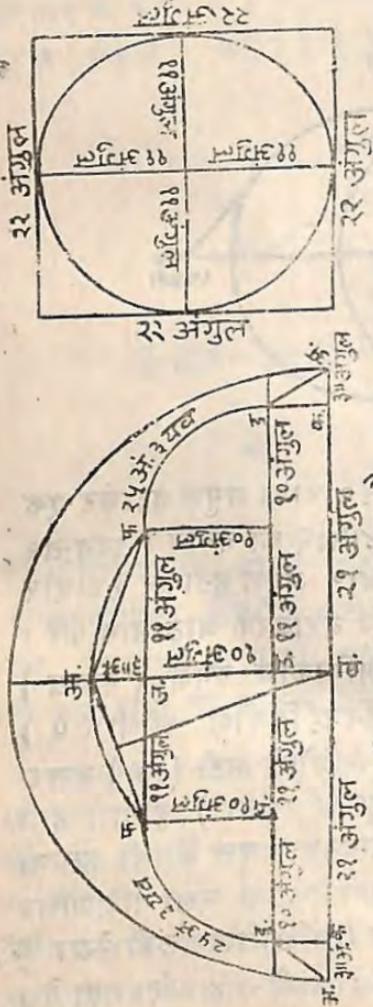
बनावे। फिर सब नीचे के भागकों मिटादेनेसे धनुषाकार कुण्ड बन जाता है। यही पक्ष उत्तम है।



मध्यकेन्द्रसे—दक्षिणदिशाको तरफ १०।४।५। अंगुल हटाकर एक चिह्न करे। इस चिह्न से एक वृत्त १४।५।२ का बनावे। तदनन्तर मध्यकेन्द्रसे दक्षिणदिशाकी तरफ १०।४।५ अंगुल हटाकर १४।५।२ का वृत्त बनावे। तदनन्तर वृत्तके बराबर बराबरके आठ भाग करे।
 (१) पूर्वदिशा—मुख होगा (२) अग्निकोण डगुश (स्कन्ध) होगा (३) दक्षिणदिशा पाश्व (४) नित्र्वृत्तिकोण श्रोणी (५) पश्चिम दिशा पुच्छ (६) वायव्यकोण—श्रोणी कटी (७) उत्तरदिशा—पाश्व (८) ईशानकोण—डगुश (स्कन्ध) होगा। इसी प्रकार वायें वृत्त में भी कल्पना करे। तदनन्तर वृत्त में भी कल्पना करे। तदनन्तर वृत्तके भीतर ठीक मध्यसे एक रेखा दक्षिणोत्तर लंबी सीधी दे। फिर वृत्तके बाईं तरफ (दक्षिणोत्तर लंबी रेखा के अन्तिम सिरे से) दक्षिण दिशासे एक रेखा लंबी—४।७।१। बढ़ा दे। वैसे ही उत्तर दिशा से एक लंबी रेखा ४।७।१। बढ़ा दे। तदनन्तर—दक्षिणदिशामें पाश्व और स्कन्ध के मध्य में चिह्न कर ४।७।१। बाली

(रत्नि कुण्ड)

(आगन्तुक चतुरस्र प्रदर्शनाय क्षेत्रम्)



यह लघुपीठ प्रालीकरण करका है।

रेखाके अन्तिमसिरेसे एक रेखा टेढ़ी ले जाकर पार्श्व और स्कन्धके मध्य चिन्ह में मिला दे । वैसे ही उत्तर दिशा में - पार्श्व और स्कन्धके मध्यमें चिन्ह कर ४१७११ बाली—रेखाके नोट—कुण्डरत्नाबाली में जो १ इक्कोक है उसकी जगह 'मध्याद् व्यासाग्नि ३ भागे स्वर-विलविहीने कृते' ऐसा बढ़ा जाय तो अच्छा मालूम होता है । व्यास २११२१४ का तृतीयांश निकाल कर ११६।१ को द्वादशांश-अर्थात् स्वमति व्यास का (२११२१४) का जो द्वादशांश-हो उसको तृतीयांश में घटा दे को ७।२१५ होगा ।

(२) २११२१४ का आशा १४।५।२ हुआ १४।५।२ को २११२१४ में जोड़ेंगे तो ४३।।७।६ होगा । अर्थात् - सादर्थव्यासार्थ होगा । उसमें पष्ठांश जोड़ेंगे तो १।६।१ को ५।३।५।७ होगा । इतनी बड़ी बूतों में और बाहर ज्या होगी । २११२१४ का चतुर्थांश ७।१।२।५ होगा ।] नोट—विशेष त्रिंश्य स्त्रिंश्य में देखें ।

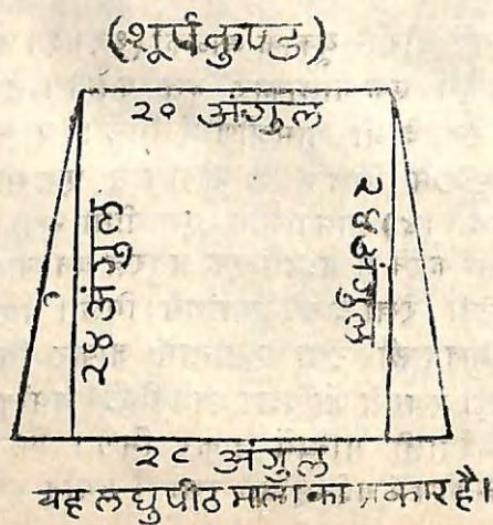
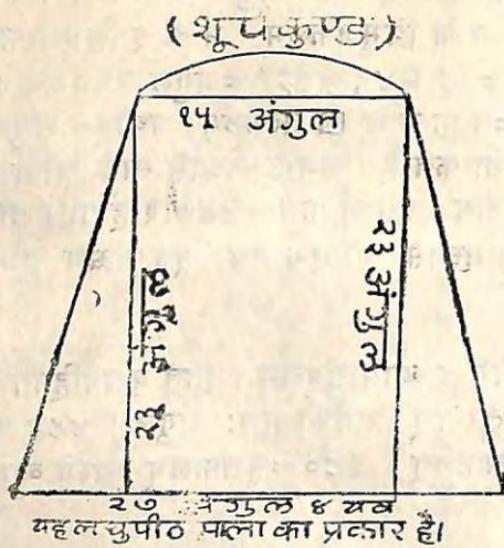
अ ब = ४२।। अंगुल, अ क = ३।। अंगुल, क ब = २१ अंगुल, क
क इ उ ब = संग्राहार्धफलम् = ७३ अंगुल ४ यव, इ प क = वृत्तपाद-
फलम् = ७८।४, प च ज त्रिभुजफलम् - अ क इ त्रिभुज फल = कोणां-
शफलम् $\frac{४३}{४} = \frac{१०१}{४} + ४९ = \frac{१४३}{४}$ = अंगुल २५। यव ३। ज्यास्पृक्
सूत्रान्तश्चतुरस्त्रम् = प फ ज उ च तत्कलम् अर्थात् - चतुरस्त्रफलम् =
११०। यह आधे का फल है। अर्थात्-मध्यसे साढ़े चौबीस अंगुल का
एक आधा चाप बनावे। इसका फल—२८।३ होगा। दोनों चापका
फल ५७।६ होगा। मध्यसे जो एक रेखा पूर्व पश्चिम होगी वह १७
अंगुल की होगी।

अर्थात्—प और उ व्यासार्धवृत्तम्। एतत् वृत्तबहिर्गतं यद् चतुरस्त्रं
तदेवागन्तुकं समचतुरस्त्रम्। तत्रैको भुजः अंगुल। ४८४ = २२ × २२
= आगन्तुक चतुरस्त्रफलम्। ३८० = वृत्तफलम्। यस्य व्यासः = २२।
१०४।

राहुकुण्ड का प्रथमप्रकार-

३८ अंगुल ३ यव और २ यूकाके आधेको (१९। १। ५) प्रकाल से
नापकर मध्य विन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर (१)
मुखसे एकसीधी रेखा दे जो वामश्रोणीमें मिले। (२) दशांशसे एक
सीधी रेखा दे जो पुच्छमें मिले। (३) वामांश से एक सीधी रेखा दे
जो दक्षपाश्वमें मिले। (४) वामपाश्वसे एक सीधी रेखा दे जो दक्ष-
श्रोणीमें मिले। ऐसा करने से मध्यमें एक चतुरस्त्र बन जाता है। फिर
वामपाश्व से एक टेढ़ी रेखा दे जो वामांशसे मिले। अर्थात् वामांश-
वाली रेखा और मुखवाली रेखा के सन्धिमें जाकर मिले। वैसे ही
दक्षश्रोणीसे एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षपाश्वमें मिले। अर्थात्-पुच्छवाली
रेखा और दक्षपाश्ववाली सन्धिमें जाकर मिले। फिर—जो रेखा
वामांशसे दक्षपाश्वकोणमें गई है उस रेखा में अर्थात्—वामांश और

मुख की सन्धि से और दक्षपाश्वं पुच्छवाली रेखाकी सन्धि के बीचके



हिस्सेका मध्यसाधन कर दो वृत्तार्ध बनावे । अर्थात्—आधे वृत्त बनाने से शूर्पकुण्ड बन जाता है ।

द्वितीय प्रकार — ३९ अंगुल ६ यूकाका आधा नापकर मध्य बिन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे । तदनन्तर पूर्ववत् सब क्रिया करे । केवल वामांशवाली रेखामें जो दो वृत्तार्ध (शूर्पके आकारकी तरह बने हैं) वे इस दूसरे प्रकार में न बनकर केवल उननी जमीनका मध्य साधनकर मध्यमें प्रकालरख ईशानवाली सन्धिसे घुमाकर दूसरी सन्धि में मिला देनेसे शूर्पकुण्ड बन जाता है ।

(१) संग्राहोर्धे सार्धरामेण चापेन्तर्जोर्हः स्याद् वृत्तपादोदिकञ्चात् । सूत्राद्रीद्राद्वाह्यमौर्व्यर्हमेवं वृत्तं दद्याज्ज्यास्पृगेवं परार्धम् ॥ चापे यदर्ष तत्र सार्धच्यड्गुलेन संग्राहः भागः कर्तव्यः । ततः दशाड्गुलात्सूत्रादन्तज्यर्हिः वृत्तपादः कर्तव्यः । तथा तत्र एकादशाड्गुलेन सूत्रेण चापज्यास्पृक् बाह्यज्यार्हं वृत्तं दद्यात् । तथा च व्यासं ग्राहचिन्हयोरन्तरं २१ एकविशत्यड्गुलं भवति । एवमेव द्वितीयार्धं भवति । अन्तर्बैर्हिज्यर्हित्वं तदसत्त्वार्थम् । अत्र फलं संग्राहार्धफलम्—७३।४। वृत्तपादफलम्—७८।४। ज्यास्पृक् सूत्रान्तश्चतुरस्फलम् तत्र एका कोटि: ११ परा कोटि: १०कोणांशफलम् २६ तत्रागन्तुके चतुरसे अंशत्रयं ७८ त्वक् सूत्रान्तश्चतुरस्फलम् तत्र एका कोटि: १० कोणांशफलम् २६ तत्रागन्तुके चतुरसे अंशत्रयं ७८ त्यक्त्वा शेषांशो ग्राह्यः २६ । तथा च ७३।४। एवं ७८।४ एवं ७८।४ एवं ११० एकत्र २२८ एवं परार्धस्य २८८ मिलितम्—५७६ ।

नोट—जोड़ में २८८।७३।४, ७८।४, ११, २५।३, २८८। आता है । पाँच यव का अन्तर पड़ता है ।

नोट—मुद्रित संस्काररत्नमाला, संस्कारगणपति, कुण्डरत्नावली, लिखित—ग्रहपीठमाला आदि भी देखिये ।

राहुकुण्ड—तात्पर्य यह है—दक्षश्रोणीसे रेखाका नाप ७२ अंगुल ४ यव है। दक्षपाश्व से वामांशकी रेखाका नाप १५ अंगुल है और चतुरस्तके भीतर वाली रेखा पुच्छ और मुखकी रेखाका नाप अलग अलग २३ अंगुल है। दक्षश्रोणी और वामपाश्व वाली रेखा जो चतुरस्तके बाहर पड़ेगी वह अलग २६ अंगुल २ यव है, अर्थात् दोनों छोर दक्षश्रोणी और वामपाश्व १२ अंगुल ४ यव है। वामांशवाली रेखाका अर्थात् चतुरस्तका मध्य (१५ अंगुलका आधा ७॥ अंगुल का) साधन कर प्रकालसे घुमा दे तो धनुषाकारकुण्ड बन जाता है। यह लघुपीठमालाका प्रकार है।

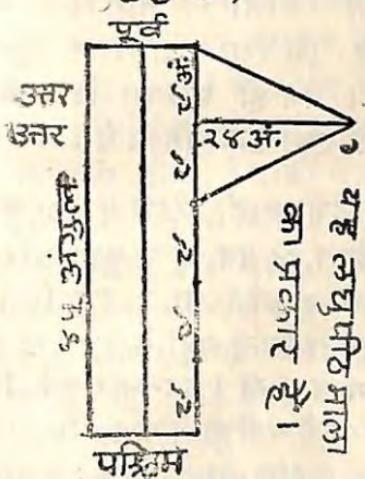
अथवा—२८ अंगुल दक्षश्रोणीवाली रेखा दक्षपाश्वकी रेखा २० अंगुल की। मुख और पुच्छ की रेखा जो चतुरस्तके भीतर है। वह अलग अलग २४, २४ अंगुल की है। इसमें इतने ही बननेसे शूर्प बनजाता है। यह लघुपीठमाला दूसरा प्रकार है।

केतु कुण्ड का प्रथम प्रकार—

- (१) (क) मध्य विन्दु से ३ अंगुल हटाकर एक सीधी रेखा पूर्व से पश्चिम अर्थात्—दक्षिण दिशा में दे जिसका नाप ५४ अंगुल होगा।
- (२) मध्य विन्दु से ४ अंगुल हटाकर एक सीधी रेखा पश्चिम से पूर्व अर्थात्—उत्तर दिशा में दे जिसका नाप ४५ अंगुल होगा। (अर्थात् मध्य विन्दु से ४ अंगुल हटाकर साढ़े बाइस अंगुल की रेखा पूर्व दशामें और साढ़े बाइस अंगुल पश्चिम दिशामें (दक्षिण दिशा में) दे। वैसे ही साढ़े बाइस अंगुल की सीधी रेखा पश्चिम दिशा में और २२॥ अंगुल पूर्व दिशा में (उत्तर दिशा में) दे, (३) तदनन्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा में—पूर्व दिशा से ९ अंगुल पर एक चिन्ह करे। (४) उस चिन्ह से फिर ९ अंगुल पर दूसरा चिन्ह करे ऐसा बरने से दो चिन्ह नव नव अंगुल के अलग २ हुए। वैसे कुल जगह १८ अंगुल हुई। (५) तदनन्तर जो पूर्व दिशा से ९ अंगुल पर चिन्ह किया है उस चिन्ह से २४ अंगुल की एक सीधी रेखा दक्षिण दिशा की तरफ ले जाय। (५)

दक्षिण दिशा वाली रेखा के पूर्व दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा में २४ अंगुल वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। वैसे ही

(केतुकुण्ड)



दूसरे ९ अंगुलात्मक चिन्ह से एक टेढ़ी रेखा दे जो २४ अंगुल वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। ऐसा करने से केतु कुण्ड ध्वजाकर बन जाता है। (क) मध्य बिन्दु को सर्वश करती हुई एक रेखा मुख से प्रारंभकर (पूर्व दिशा से) पुच्छ (पश्चिम दिशा तक) में मिला दे।

द्वितीय प्रकार-

जैसे मण्डप १६ हाथ है तो फी भाग ५ हाथ ८ अंगुल होगा। तो वायव्यकोण का भाग भी ५ हाथ ८ अंगुल का होगा उसका मध्य दो हाथ ९९ अंगुल होगा। उस मध्य से (२९।०।०।६) इकीस अंगुल ६ लिक्षा उत्तर की तरफ हटकर एक चिन्ह कहे उस चिन्ह से २९ अंगुल शून्य यव ६ यूका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस मध्य से

(यह मध्य की दण्ड वृहज्या ५८ । १ । ४ होगी) दो अंगुल और ५ यूका हटाकर एक रेखा दे जो पूर्व में पश्चिम दिशा की तरफ हो अर्थात् दक्षिण दिशा की तरफ हो । वैसे ही उसी मध्य से २ अंगुल और ५ यूका हटाकर उत्तर की तरफ एक पूर्व से पश्चिम एक रेखा दे । जिन दोनों रेखाओं का नाम अलग ५८ । ० । ३ होगा । तदनन्तर पूर्व दिशा से एक रेखा दक्षिणोत्तर देकर दोनों रेखाओं के अग्रभाग को मिला दे । वैसे ही पश्चिम दिशा से दक्षिणोत्तर दोनों रेखाओं के अग्रभाग से रेखा द्वारा मिला दे ।

तदनन्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा का ४ भाग बराबर बराबर करे । फी भाग १४ अंगुल, ४ यव, शून्य यूका और छः बालाघ होगा । अर्थात् दक्षिण दिशा का अपूर्व दिशा से एक चिन्ह १४ । ४ । ० । ६ पर करे । तदनन्तर दूसरा चिन्ह वहाँ से १४ । ४ । ० । ६ पर मध्यसे करे । वही रेखा का मध्य होगा । तदनन्तर पूर्व दिशा जो १४ । ४ । ० । ६ पर चिन्ह किया है वहाँ से एक सीधी रेखा दक्षिण दिशा की तरफ दे जिसका नाप २३ । ० । ४ होगा । अर्थात् वहाँ से जो रेखा चलेगी वह अग्निकोण (दक्षांश) परिधि के २४ अंशमें लगेगी । फिर पूर्व दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा में दी हुई रेखा के अन्तिम सिरे में मिले । और मध्य में पश्चिम दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले । ऐसा करने से ध्वजाकार कुण्ड बनेगा ।

नोट — ३५ अंगुल की जो रेखा दक्षिण दिशा में दी गई है । जिसे 'दण्ड वृहज्जा' शब्द से कह सकते हैं । उस रेखा के पाँच भाग करे । फी भाग ७ अंगुल का होगा ।

नोट — व्यास ५८ । १ । ४ । गुणलव १९ । ३ । १ । ३ । इनांश १ । ४ । ७ । ३ । गुणलव और द्वादश का जोड़ २१ । ० । ० । ६ । होगा ।

तृतीय प्रकार केतु कुण्ड का कुण्डरत्नावली से—

५८ अंगुल, १ यव और ४ यूका के आधे को १४।४।३। प्रकाल से नाप कर मध्यविन्दु से दो अंगुल और ५ यूका हटाकर एक रेखा दक्षिण दिशा की तरफ (पूर्व से पश्चिम दिशा की तरफ दे । तद्वत् मध्य विन्दु से दो अंगुल और ५ यूका हटाकर उत्तर दिशा की तरफ (पूर्व से पश्चिम दिशा की तरफ) दे । इस रेखा नाप अलग-अलग ५८ अंगुल, ३ यूका होगा जिसे ध्वजदण्ड बृहज्ज्या शब्द से कहा जाता है । तदनन्तर पूर्व दिशा से दोनों रेखाओं को मिला दे रेखा द्वारा दक्षिणोत्तर । वैसी ही पश्चिम तरफ मिला दक्षिणोत्तर । ध्वजदण्ड बृहज्ज्या से दक्षिण दिशावाली रेखा जो है । जिसका नाप ५८।३। है उसका चार भाग करे प्रत्येक भाग अर्थात्—फी भाग १४ अंगुल, ४ यव, शून्य यूका और छः बालाग्र होगा । अर्थात्—पूर्व दिशा से—१४।४।०।६ पर चिह्न करे । वह प्रथम चिह्न से १४।४।०।६। पर द्वसरी चिह्न करे । तदनन्तर प्रथम चिह्न से—एक रेखा दक्षिण दिशा की तरफ दे, जिस रेखा का नाप लंबाई २३।०।७।४ होगा । फिर—पूर्व दिशा के कोने से एक टेढ़ी रेखा दे, जो दक्षिण दिशा में बढ़ी हुई रेखामें (२३।१।७।४) में मिले । वैसे ही दक्षिण दिशा से एक रेखा २३।०।७।४ वाली में मिले । ऐसा करने से केतु कुण्ड बन जाता है ।

विशेष—कुण्डरत्नावली में जो श्लोक है—[मध्यात् धायोदिशायां ततिगुण] ३ लवके स्वेन भागेन हीने कृते । ऐसा पढ़ा जाय तो उत्तम मालुम होता है । व्यास ५८।१।६ तृतीयांश १९।३।१।४ स्वद्वादशांश हुआ । व्यास ५८।१।४ का १२ वाँ भाग ४।६।३ हुआ इसको तृतीयांश से घटाने से १४।४।३।०। होगा । यहीं पक्ष उत्तम है ।

अर्थात् मध्य केन्द्र से १४।४।३। का एक वृत्त बनाकर उस वृत्तमें पूर्व ओर पश्चिम में एक रेखा लंबी दे जिसकी लंबाई ५८।१।४ होगी । इस रेखा के मध्य भाग से एक रेखा दक्षिण की तरफ (२ अंगुल और

२ युका हटाकर होगी : इस रेखा का जो होगा उस मध्यमें पूर्व दिशा की तरफ १४।४।३। पर एक चिह्न होगा । इसकी लम्बाई दक्षिण की तरफ २३।०।७।४ होगी ।

ग्रहकुण्डों में योनि का स्थान निर्देश-

कुण्डरत्नावल्याम्—

पञ्चास्तं च त्यस्तकं बाणकुण्डं दीर्घम्नायास्त्रीति सौम्याग्निकाणि ।
चापं शूर्पं पश्चिमज्यं च केतुर्दक्षाग्रः स्यात्सौमिकं चोत्तरास्यम् ॥

निर्णयसिन्धुटीकायाम्—

यष्टिर्बणैः सौम्यदिश्यग्र एव त्यस्तं तादृक्षूर्पकं पश्चिमास्यम् ।
बाहूर्स्पस्पत्यं सौम्यदीर्थं धनुस्तत्पश्चाद् दिग्ज्यं शुक्रियं सौम्यकोणम् ॥



नोट— (१) मध्य विन्दु की रेखा का नाप ५८ अंगुल ३ युका होगा जिसे दण्ड बृहज्ज्या शब्द से कहते हैं । और २५।१।४।४ वाली रेखा का नाप मध्य विन्दु से होगा । दक्षिण दिशा वाली रेखा से तो १३।०।७।४ होगा । पूरी रेखा का नाप दक्षिण से उत्तर जायगी । अर्थात् पूर्वदिशा से जो मध्य १४।४।०।६ पर करेंगे वही रेखा पूरी ५०।३।१ की होगी ।

अनुशासन अनुशासन अनुशासन अनुशासन

कुण्डु-मण्डुपके सम्बन्धमें आविश्यक
विचार व कुण्डुके भेद

अनुशासन अनुशासन अनुशासन अनुशासन

आठ प्रकार के कुण्ड-

चतुरस्त्र कुण्ड, योनिकुण्ड, अर्धचन्द्र कुण्ड, त्रिकोण कुण्ड, वृत्त कुण्ड, (वर्तुल कुण्ड), षडस्त्र कुण्ड, पद्म कुण्ड और अष्टास्त्र कुण्ड—ये आठ प्रकार के कुण्ड होते हैं ।

एक कुण्ड-

एक कुण्ड के यज्ञमें मण्डपके मध्यमें ही कुण्ड बनता है । एक कुण्ड के यज्ञमें चतुरस्त्र अथवा पद्म कुण्डका निर्माण किया जाता है, किन्तु कामना-भेदसे अन्य कुण्डका भी निर्माण हो सकता है ।

पाँच कुण्ड-

पाँच कुण्डके यज्ञमें पूर्वमें चतुरस्त्र, दक्षिणमें वृत्तार्ध (अर्धचन्द्र), पश्चिममें वृत्त (वर्तुल), उत्तरमें पद्म और मध्यमें चतुरस्त्र कुण्ड ही (आचार्यकुण्ड) होता है ।

नव कुण्ड-

नव कुण्डके यज्ञमें पूर्वमें चतुरस्त्र, अग्निकोणमें योनिकुण्ड, दक्षिणमें अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध), नैऋत्यकोणमें त्रिकोण, पश्चिममें वृत्त (वर्तुल), वायव्यकोणमें षडस्त्र, उत्तरमें पद्मकुण्ड, ईशानकोणमें अष्टास्त्र (अष्टकोण) और मध्यमें चतुरस्त्र कुण्ड ही (आचार्यकुण्ड) होता है ।

चार कुण्ड-

चार कुण्डके यज्ञमें बीचमें जो प्रधानवेदी होती है । पूर्वमें चतुरस्त्र, दक्षिणमें अर्धचन्द्र, पश्चिममें वृत्त और उत्तरमें पद्मकुण्ड होता है ।

नव कुण्डों की योनि पर विचार-

नव कुण्डके यज्ञमें पूर्व में चतुरस्त कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है ।

अग्निकोणमें योनिकुण्ड होता है । इसमें योनि नहीं होती ।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है ।

नैऋत्य कोणमें त्रिकोण कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है ।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है ।

वायव्य कोणमें षडस्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है ।

उत्तरमें पद्मकुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है ।

ईशानकोणमें अष्टास्त कुण्ड (अष्टकोण) की योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है ।

मध्यमें चतुरस्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है ।

पाँच कुण्डोंकी योनि पर विचार-

पाँच कुण्डके यज्ञमें मध्यके कुण्ड की (चतुरस्त कुण्डकी) योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्रही होती है ।

पूर्वमें चतुरस्त कुण्डकी योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है ।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है ।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है ।

उत्तरमें पद्मकुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है ।

चार कुण्डों की योनि का विचार-

पूर्वमें चतुरस्त्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है ।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है ।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है ।

उत्तरमें पच्चकुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है ।

मेखला और रंगका विचार कुण्डमें-

प्रत्येक कुण्डमें तीन-तीन मेखला होती हैं । ऊपरकी मेखलाका सफेद रंग, मध्यकी मेखलाका लाल रंग और नीचे की मेखलाका काला रंग होता है ।

कुछ कुण्डोंका अलग-अलग फल-

चतुरस्त्र कुण्ड समस्त प्रकारकी सिद्धिको देनेवाला है । योनिकुण्ड पुत्रको देनेवाला है । अर्धचन्द्र कुण्ड (वृत्तार्ध कुण्ड) शुभ फलको देनेवाला है । त्रिकोण कुण्ड शत्रुओंका नाश करनेवाला है । वृत्तकुण्ड (वर्तुलकुण्ड) शान्ति-स्थापन करनेवाला है । पडस कुण्ड मृत्युच्छेदन करनेवाला (मृत्युको दूर करनेवाला) है । पच्चकुण्ड वृष्टिको देनेवाला है । अष्टास्त्र कुण्ड रोगको हटानेवाला है ।

वर्णभेद से कुण्डनिर्माण की व्यवस्था

एक कुण्डके यज्ञमें वर्णभेदसे ही कुण्ड बनाना चाहिये । जैसे— ब्राह्मणके लिये चतुरस्त्र, क्षत्रियके लिये वृत्त (वृत्तल), वैश्यके लिये अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध) और शूद्रके लिये त्रिकोण कुण्ड कहा गया है । अथवा वर्णचतुष्टयके लिये चतुरस्त्र या वृत्त कुण्ड कहा गया है ।

स्त्री यदि यज्ञ करे, तो उसके लिये योनिकुण्ड अथवा चतुरस्त्र कुण्ड के लिए कहा गया है ।

विविध यज्ञों के कुण्डादि का विचार-

- १—विष्णुयागमें १, ५ और ९ कुण्डों के निर्माण का विधान कुण्ड-मण्डपके ग्रन्थों में मिलता है।
- २—प्रतिष्ठा और तुलादानादि के लिये ७ कुण्डका विधान ‘नारद-पञ्चरात्र’ में और चार कुण्डका विधान ‘दानमयूख’ में मिलता है।
- ३—एक कुण्ड के विष्णुयागमें एक कुण्डके महाविष्णुयाग में और एक कुण्डके अतिविष्णुयागमें ६ हाथ (५८ अङ्गुल और ६ यव) का कुण्ड होता है।
- ४—विष्णुयागमें ५ कुण्ड एक-एक हाथ (चौबीस अङ्गुल) लंबे और चौड़े होते हैं।
- ५—महाविष्णुयागमें ५ कुण्ड दो-दो हाथ (चौंतीस अङ्गुल) लंबे और चौड़े होते हैं।
- ६—अतिविष्णुयागमें ५ कुण्ड चार-चार हाथ (अङ्गतालीस अङ्गुल) के लंबे और चौड़े होते हैं।
- ७—रुद्रयागमें भी विष्णुयागकी तरह १, ५ और ९ कुण्ड होते हैं। कुछ लोग रुद्रयाग में रुद्रपदेन ११ कुण्ड बनाते हैं।
- ८—नवग्रहयागमें सूर्यकी प्रधानता होनेके कारण मध्य का कुण्ड ही प्रधानकुण्ड (आचार्यकुण्ड) होना चाहिये, यह ‘शतिमयूख’ का मत है।
- ९—कोटिहोममें १००, १०, २ अथवा १ कुण्ड होता है।
- १०—सौ कुण्डोंके यज्ञमें सभी कुण्ड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र होते हैं। दस कुण्डोंके यज्ञमें सभी कुण्ड वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्म होते हैं।

दो कुंडोंके यज्ञमें दोनों कुंड वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्म होते हैं ।

एक कुंडके यज्ञमें वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्मकुंड होता है ।

११—कोटिहोममें प्रधानकुंड नैऋत्यकोणमें होना चाहिये, यह 'शान्तिमयूख' आदिका मत है ।

१२—कोटिहोम में प्रधानवेदी पूर्व दिशामें होती है ।

१३—कोटिहोममें अग्निस्थापन प्रधानकुंडमें ही करना चाहिये और प्रधानकुंड से ही अग्नि ले जाकर अन्य कुंडों में अग्निस्थापन करना चाहिये ।

१४—कोटिहोममें सौ कुंड हों, तो प्रत्येक कुंड एक-एक हाथ लंबा और चौड़ा होता है ।

कोटिहोममें दस कुंड हों, तो प्रत्येक कुंड छ-छ हाथ लंबा और चौड़ा होता है ।

कोटिहोम में दो कुंड हों, तो दोनों कुंड छः-छः हाथ लंबे और चौड़े होते हैं ।

कोटिहोममें एक कुंड हो, तो आठ हाथ का अथवा दस हाथ का अथवा सोलह हाथ का कुंड होता है ।

आहुतियों के अनुसार कुण्ड का प्रमाण-

पचास से कम आहुति कुंड में नहीं होती, किन्तु स्थण्डिल होता है । पचास से निन्यावे तक आहुति में इक्कीस अड्गुलका (बँधी हुई मुट्ठी भर हाथका) कुण्ड होता है ।

सौ से नौसौ निन्यावे तक आहुतिमें २२१ अड्गुल (अरत्नमात्र) का कुण्ड होता है ।

एक हजार—आहुतिमें १ हाथका कुण्ड होता है ।

दस हजार—आहुतिमें २ हाथका कुण्ड होता है ।

एक लाख—आहुतिमें २ हाथका कुण्ड होता है ।

दस लाख—आहुतिमें ६ हाथका कुण्ड होता है ।

एक करोड़—आहुतिमें ८ हाथका कुण्ड होता है ।

शारदातिलक का मत है कि कोटिहोम में १० हाथका कुण्ड होना चाहिए—

‘दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि दृश्यते ।’

किसी आचार्यका मत है कि कोटिहोममें सोलह हाथका कुण्ड होना चाहिये ।

[पेज ९१ से ९५ तक]

[उद्घृत अंश]

तु तिनि एवं विद्या के विलोग—जिसका
 स्वरागि अप्रभाव नहीं है—अब उ
 की जैसी वज्र विद्या के विलोग—जिसका
 ऐ विशेष प्रभाव है—विलोग विनाश
 के विशेष प्रभाव है विलोग—विनाश
 के विशेष प्रभाव है विलोग—विनाश

। इन्हें विलोग की विविधता विनाश
 के विशेष प्रभाव है विलोग की विविधता विनाश

। इन्हें विलोग की विविधता विनाश
 के विशेष प्रभाव है विलोग की विविधता विनाश

विविध यज्ञों के स्वाहाकार

यज्ञादौ स्वाहाकारनिर्णयः

सर्वैरपि पद्धतिकारैः पुरुषसूक्तस्य समग्रस्य अन्ते नाममन्त्रेण संयुत-
स्यैकमन्त्रत्वमुक्तम् । अतो मन्त्रादावेवोङ्कारः प्रयोक्तव्यः, एवं यत्र ऋचो-
अन्ते नाम-मन्त्रस्यापि संयोजनं विहितं तत्र सर्वत्रापि नाममन्त्रसहितस्यैव
ऋगादेः असति बाधके एकमन्त्रत्वप्रतीत्या “मन्त्रान्तः कर्मादिः सान्नि-
पात्योऽभिधानात्” इति सूत्रकारवचनेन सन्दर्भाणां प्रयोगसमवेतार्थस्मार-
कत्वमिति मीमांसान्यायेन च मन्त्रैकत्वावसानात् । मन्त्रभेदाङ्गीकारे
विकल्पापत्त्या मन्त्रादावेवोङ्कारः पठनीयो न तु तन्मध्ये नाममन्त्रादौ ।
तथा च “ॐ सहस्रशीर्षा० साध्याः सन्ति देवाः नारायणाय स्वाहा”
इत्युक्त्वा होमः कार्यः, न तु ‘नारायणाय स्वाहा’ इत्यस्य पूर्वम् ओङ्कारः
पठनीयः । तथात्वे मन्त्रभेदापत्त्या पूर्वोक्तदोषापत्तेः । यत्र तु ऋगन्ते
द्वादशाक्षरमन्त्रस्य संयोजनं विहितं तत्र ओङ्कारघटितस्यैव द्वादशाक्षर-
सम्पत्त्या ओङ्कारः पठनीय एव । यथा “ॐ सहस्रशीर्षा० सन्ति देवाः
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा” इति । एवं यत्र ऋगन्ते नाममन्त्र-
संयोजनं विहितं तत्र ऋगन्ते चतुर्थ्यन्तनाम पठित्वा तदन्ते स्वाहाकार-
नियोज्य होमः कार्यः । यथा—“ॐ सहस्रशीर्षा० दशाङ्गुलम् विष्णवे
स्वाहा” इति । एव केवलनाममन्त्रेण यत्र हवनमुक्तं तत्रापि चतुर्थ्यन्तनाम
पठित्वा तदुपरि स्वाहाकारं संयोज्य हवनं कर्तव्यम् । यथा “अग्नये
स्वाहा” इत्यादि । एवमेव सर्वेषु सूत्रेषु विधिरस्ति । न तु नाममन्त्रान्ते
नमः शब्दं संयोज्य तदुपरि स्वाहाकारं संयोज्य “अग्नये नमः स्वाहा”
इति होमः समुचितः । किन्तु “अग्नये स्वाहा” इत्येव । यत्र तु मन्त्रादौ

नमोऽन्तस्येव मन्त्रत्वमुक्तं तत्र परं “नमः” शब्दं पठित्वा तदुपरि स्वाहा-
कारो योजनीयः । यथा अग्ने नष्टः स्वाहा” इति । नैतावता सर्वस्यापि
नाम्नोऽन्ते “नमः” शब्दं पठित्वा स्वाहाकारो योजनीयः । यत्र स्वाहान्त-
स्येव मन्त्रत्वं तत्र तावतैव होमो न तु तदुपरि अन्यः स्वाहाकारः, यथा
“वेद् स्वाहा” इत्यादौ ।

श्रुतिषु च ‘वाजाय स्वाहा’ इत्यादि स्पष्टलिखितत्वान्नास्ति सन्देह-
लेश इति । ये तु “नमः” शब्दोत्तरं “स्वाहा” शब्दं पठन्ति तत्र मूलमन्त्रे-
ष्यम् । तस्मान्नमःशब्दरहितेनैव नाममन्त्रेण होम इत्युद्योतरत्नादाविति
प्रतिष्ठेन्दुः ।

—विद्याधर गौड़

अथ विष्णुयागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
 स भूमिर्ठ० सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
 पुरुष॒ एवेदर्थ० सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
 उतामृतत्वस्येशानो यदन्नैनानातिरोहति ॥ २ ॥
 एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
 पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
 त्रिपादूर्ध्व॒ उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
 ततो विष्णुङ्क व्यक्तास्तसाशनानशनैऽ अभि ॥ ४ ॥
 ततो विराङ्गजायत विराजोऽ अधि पूरुषः ।
 सजातोऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥
 तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भूतं पृष्ठदाज्यम् ।
 पश्चूस्ताँश्चक्के व्यायवयानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥
 तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत॒ ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
 छन्दाऽप्सि जज्ञिरे तस्माद्यज्ञस्तस्माद्जायत ॥ ७ ॥
 तस्मादश्वाऽ अजायन्त ये के चोमयादतः ।
 गावो ह जज्ञिरे तस्माच्चस्माज्जाताऽ अजावयः ॥ ८ ॥

तं यज्ञं वर्दिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातसग्रहः ।
 तेन देवाऽ अयजन्त साध्याऽ ऋषयथ ये ॥९॥
 यत्पुरुषं व्यदधुः कितिधा व्यकल्पयन् ।
 मुखं किमस्यासीत्किं वाहू किमूरुं पादाऽ उच्येते ॥१०॥
 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् वाहू राजन्यः कृतः ।
 ऊरुं तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यार्थं शूद्रोऽ अजायत ॥११॥
 चन्द्रमा मनसो जातशक्तोः स्तर्योऽ अजायत ।
 श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
 नावभ्याऽ आसीदन्तरिक्षर्थं शीण्णो धौः समवर्तत ।
 पदभ्यां भूमिदिशः श्रोत्रात्था लोकाँ॒॒॒ अकल्पयन् ॥१३॥
 यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
 व्यसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्माऽ इध्यः शरद्धवि ॥१४॥
 सप्तस्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
 देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽ अवधन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥
 यज्ञेन यज्ञमयनन्त देवास्तानिवद्भाणं प्रथमान्यासन् ।
 ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

अथ लक्ष्मीयागस्वाहाकारमन्त्राः

अँ हिरण्यवर्णं हरिणीं सुवर्णरजतसजाम् ।
 चन्द्रां हिरण्यर्णीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १ ॥
 तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
 यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुहषानहम् ॥ २ ॥
 अश्वपूर्वं रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
 श्रियं देवी मुपह्ये श्रीर्मा देवी जुपताम् ॥ ३ ॥
 कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामाद्रीं ज्वलन्तीं तुसां तर्पयन्तीम् ।
 पद्मे स्थितां पद्मवर्णं तामिहोपह्ये श्रियम् ॥ ४ ॥
 चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
 तां पश्चिनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्में नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥
 आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ विल्वः ।
 तस्य फलानि तपसानुदन्तु या अन्तरा या वाद्या अलक्ष्मी॥ ६ ॥
 उपैतु मां देवसखः कीर्तिंश्च मणिना सह ।
 प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रोऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥
 क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
 अभूतिमसमृद्धिं च सर्वा निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
 ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपहृये श्रियम् ॥ ९ ॥
 मनसः काममाकृति वाचः सत्यमशीमहि ।
 पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥
 कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभव कर्दम ।
 श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥
 आपः सृजन्तु स्तिग्धानि चिक्लीत वस मे गृहै ।
 नि च देवी मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥
 आद्र्द्वा पुष्करिणीं पुष्टि पिङ्गला पद्ममालिनीम् ।
 चन्द्रां हिरण्मर्थीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १३ ॥
 आद्र्द्वा यः करिणीं यष्टि सुवर्णीं हेममालिनीम् ।
 सूर्यीं हिरण्मर्थीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १४ ॥
 तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगानिनीम् ।
 यस्यां हिरण्यं प्रभूतंगावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥ १५
 यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
 सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥
 ॥ इति लक्ष्मीयाग स्वाहाकार मन्त्राः ॥

अथ रुद्रयाग स्वाहाकार मन्त्राः

ॐ गणानन्त्वा० स्वाहा ।

ॐ अम्बेऽ अम्बिके० स्वाहा । इति हुत्वा,

ॐ यज्जाग्रतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ सहस्रशीर्षा० (१६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ अदूध्यः सम्भृता० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ आशुः शिशाना० (१२ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ विव्राङ् वृहत्पिवतु० (१७ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ नमस्ते रुद्रद् मन्त्र्यव॑ उतो

त॑ इपवे नमः । वाहुवभ्यामुत ते नमः स्वाहा ॥ १ ॥

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी । तया नस्तन्वा
शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ यामिषुङ्गिरिशन्त हस्ते छिमष्ट्यस्तवे । शिवाङ्गिरित्र
ताङ्गुर मा हिठ॑सीः पुरुषजगत् स्वाहा ॥ ३ ॥

ॐ शिवेन व्वचसा र्या गिरिशाच्छ्रा व्वदामसि । यथा नः
सव्वमिज्जगदयद्दर्थ॑ सुमना॑ असत् स्वाहा ॥ ४ ॥

ॐ अदूध्योचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो मिष्ट् । अर्ही॑ शच्च
सव्वाङ्गमभयन्त्सव्वार्शच्च यातुधान्त्योऽधराचीः परासुव
स्वाहा ॥ ५ ॥

ॐ असौ यस्ताम्ब्रोऽ अरुणऽउत वब्ध्रुः सुमङ्गलः । ये चैनर्ठ०
रुद्राऽग्नितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो वैषा॒॑ हैड॒ ईमहेस्वाहा॥६॥

ॐ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विवलोहितः । उत्तैनङ्गोपाऽ
अदशश्रन्नहशश्रन्नुदहार्थ्यः सः दृष्ट्वो मृडयाति नः स्वाहा ॥७॥

ॐ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुष । अथो येऽ
अस्य सत्त्वानोऽहन्तेवभ्योऽकरन्नमः स्वाहा ॥८॥

ॐ प्रमुच्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्मर्योज्ज्याम् । वाश्च्च ते
हस्तऽ इषवः परा ता भगवो व्वप स्वाहा ॥९॥

ॐ विवज्ज्यन्धनुः कपर्दिनो विवशल्ल्यो वाणवाँ॒॒ डत ।
अनेशन्नस्य या॒ इषवऽ आभुरस्य निषङ्गधिः स्वाहा ॥१०॥

ॐ या ते हैतिर्मीढुष्वृम हस्ते वभूव ते धनुः । तयास्मा-
त्विवश्वतस्त्वमयन्दमया परिशुज स्वाहा ॥११॥

ॐ परि ते धन्वनो हैतिरस्मात्त्वणक्तु विवशवतः । अथो
येऽपुधिस्तवरेऽ अस्मनिधेहि तम् स्वाहा ॥१२॥

ॐ अवर्तन्य धनुष्वृठं सहस्राक्षं शतेषुधे । निशीर्थं शूल्या-
नाम्बुखा शिवो नः सुमना भव स्वाहा ॥१३॥

ॐ नमस्तऽ आयुवायानातताय धृष्णणवे । उभाब्ध्यामृत ते
नमो वाहुवभ्यान्तव धन्वने स्वाहा ॥१४॥

ॐ मा नो महान्तमृत मा नोऽबर्भकम्मा नऽ उभान्तमृत मा
नऽ उक्तिरम् । मा नो व्वधीः पितरमोत माबरम्मा नः पिर्या-
स्तन्न्वो रुद्र रीरिषः स्वाहा ॥१५॥

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नो
अशशेष रीरिषः । मा नो व्वीरान् रुद्र भावितो व्वधीर्विष्मन्तः
सदमित्त्वा हवामहे स्वाहा ॥ १६ ॥

ॐ नमो हिरण्यवाहवे सेनान्ये दिशाञ्चपतये नमः स्वाहा ॥ १७ ॥
ॐ नमो वृक्षेष्वभ्यो हरिकेशेष्वभ्यः पशुनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ १८ ॥
ॐ नमः शष्पिङ्गराय त्विपीमते पथीनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ १९ ॥
ॐ नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २० ॥
ॐ नमो वद्भलुशाय व्वद्याधिनेन्नानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २१ ॥
ॐ नमो भवस्य हैत्यै लगताम्पतये नमः स्वाहा ॥ २२ ॥
ॐ नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २३ ॥
ॐ नमः दूतायाहन्त्यै व्वनानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २४ ॥
ॐ नमो रोहिताय स्तथपतये वृक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २५ ॥
ॐ नमो भुजन्तये व्वारिवस्कृतायांपृथीनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २६ ॥
ॐ नमो मन्त्रिणे व्वाणिजाय कक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २७ ॥
ॐ नमऽउच्चैर्घोषायाकक्रन्दयते पत्तीनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २८ ॥
ॐ नमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २९ ॥

ॐ नमः सहमानाय निव्वयाधिनऽ आव्वयाधिनीनाम्पतये
नमः स्वाहा ॥ ३० ॥

ॐ नमो निपङ्गिणे ककुभाय स्तेनानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३१ ॥
ॐ नमो निचेवे परिचरायारण्ण्यानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३२ ॥
ॐ नमो व्वश्वते परिवश्वते स्तायूनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३३ ॥

ॐ नमो निषङ्गिणऽइषुधिमते तस्कक्तराणाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३४ ॥

ॐ नमः सूक्तायिवभ्यो जिधा अंसदूवभ्यो मुष्णणताम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३५ ॥

ॐ नमऽसिमदूवभ्यो नक्तक्तश्चरदूवभ्यो विवकृन्तानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३६ ॥

ॐ नमऽउष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३७ ॥

ॐ नमऽइषुमदूवभ्यो धन्वायिवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ३८ ॥

ॐ नमऽप्रातन्वानेवभ्यः प्रतिदधानेवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ३९ ॥

ॐ नमऽआयच्छदूवभ्योऽस्यदूवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४० ॥

ॐ नमो विवसुजदूवभ्यो विवदूध्यदूवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४१ ॥

ॐ नमः स्वपदूवभ्यो जाग्रदूवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४२ ॥

ॐ नमः शयानेवभ्यऽ आसीनेवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४३ ॥

ॐ नमस्तिष्ठदूवभ्यो धावदूवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४४ ॥

ॐ नमः सभावभ्यः सभापतिवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४५ ॥

ॐ नमोऽशश्वेवभ्योऽशश्वपतिवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४६ ॥

ॐ नमऽआव्याधिनीवभ्यो विविवदूध्यन्तीवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४७ ॥

ॐ नमऽउगणावभ्यस्तुर्ठं हतीवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४८ ॥

ॐ नमो गणेवभ्यो गणपतिवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४९ ॥

ॐ नमो व्व्रातेवभ्यो व्व्रातपतिवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ५० ॥

ॐ नमो गृत्सपेवभ्यो गृत्सपतिवभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ५१ ॥

ॐ नमो विवरुपेवभ्यो विवशशवरुपेवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५२॥
 ॐ नमः सेनावभ्यः सेनानिवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५३॥
 ॐ नमो रथिवभ्योऽ अरथेवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५४॥
 ॐ नमः क्षत्रुवभ्यः सङ्ग्रहीतुवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५५॥
 ॐ नमो महदुवभ्योऽ अवर्भवेवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५६॥
 ॐ नमस्तक्षवभ्यो रथकारैवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५७॥
 ॐ नमः कुलालेवभ्यः कम्परेवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥५८॥
 ॐ नमो निषादेवभ्यः पुञ्जष्टुदेवभ्यशच्च वो नम स्वाहा ॥५९॥
 ॐ नमः श्वनिवभ्यो मृगयुवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥६०॥
 ॐ नमः श्ववभ्यः श्वपतिवभ्यशच्च वो नमः स्वाहा ॥६१॥
 ॐ नमो भवाय च रुद्राय च स्वाहा ॥६२॥
 ॐ नमः शब्दाय च पशुपतये च स्वाहा ॥६३॥
 ॐ नमो नीलग्रीवाय च शितिकरणाय च स्वाहा ॥६४॥
 ॐ नमः कपर्दिने च व्युपसकेशाय च स्वाहा ॥६५॥
 ॐ नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च स्वाहा ॥६६॥
 ॐ नमो गिरिशयाय च शिपिदिष्टाय च स्वाहा ॥६७॥
 ॐ नमो मीढुष्टुकाय चेपुमते च स्वाहा ॥६८॥
 ॐ नमो हस्त्राय च व्यामनाय च स्वाहा ॥६९॥
 ॐ नमो वृहते च व्यपीयसे च स्वाहा ॥७०॥
 ॐ नमो वृद्धाय च सवृष्टे च स्वाहा ॥७१॥
 ॐ नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च स्वाहा ॥७२॥

| | | | |
|-------|---------------|-----------------|---------------|
| ॐ नमः | आश्वे | चाजिराय | च स्वाहा ॥७३॥ |
| ॐ नमः | शीघ्रभ्याय | च शीघ्रभ्याय | च स्वाहा ॥७४॥ |
| ॐ नमः | ऊर्म्मीर्याय | चावस्वन्न्याय | च स्वाहा ॥७५॥ |
| ॐ नमो | नादेयाय | च दूद्रीप्प्याय | च स्वाहा ॥७६॥ |
| ॐ नमो | जज्येष्टुठाय | च कनिष्ठाय | च स्वाहा ॥७७॥ |
| ॐ नमः | पूर्वजाय | चापरजाय | च स्वाहा ॥७८॥ |
| ॐ नमो | मद्ध्यमाय | चापगल्माय | च स्वाहा ॥७९॥ |
| ॐ नमो | जघन्न्याय | च बुद्ध्याय | च स्वाहा ॥८०॥ |
| ॐ नमः | सोवभ्याय | च प्रतिसर्थ्याय | च स्वाहा ॥८१॥ |
| ॐ नमः | याम्म्याय | क्षेम्म्याय | च स्वाहा ॥८२॥ |
| ॐ नमः | शश्लोक्याय | चावसान्न्याय | च स्वाहा ॥८३॥ |
| ॐ नमः | उर्वर्द्याय | खल्ल्याय | च स्वाहा ॥८४॥ |
| ॐ नमो | व्वन्न्याय | कवच्याय | च स्वाहा ॥८५॥ |
| ॐ नमः | श्रवाय | प्रतियश्रवाय | च स्वाहा ॥८६॥ |
| ॐ नमः | आशुषोणाय | चाशुरथाय | च स्वाहा ॥८७॥ |
| ॐ नमः | शूराय | चावमेदिने | च स्वाहा ॥८८॥ |
| ॐ नमो | विल्मिने | च कवचिने | च स्वाहा ॥८९॥ |
| ॐ नमो | व्वर्द्मिणे | च व्वरुथिने | च स्वाहा ॥९०॥ |
| ॐ नमः | श्रद्धुताय | अश्रुतसेनाय | च स्वाहा ॥९१॥ |
| ॐ नमो | दुन्दुब्भ्याय | चाहनन्न्याय | च स्वाहा ॥९२॥ |
| ॐ नमो | धृष्णवे | प्रमृश्याय | च स्वाहा ॥९३॥ |

अँनमो निपङ्गिणे चेषुधिमते च स्वाहा ॥६४॥
 अँनमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च स्वाहा ॥६५॥
 अँनमः स्वायुधाय च सुधन्नन्वने च स्वाहा ॥६६॥
 अँनमः स्रुयाय च पत्थ्याय च स्वाहा ॥६७॥
 अँनमः काटस्याय च नीप्प्याय च स्वाहा ॥६८॥
 अँनमः कुल्ल्याय च सरस्याय च स्वाहा ॥६९॥
 अँनमो नादेयाय च वैश्नन्ताय च स्वाहा ॥१००॥
 अँनमः कूप्प्याय चावटस्याय च स्वाहा ॥१०१॥
 अँनमो व्वीदूध्याय चातप्प्याय च स्वाहा ॥१०२॥
 अँनमो येष्याय च विद्युत्याय च स्वाहा ॥१०३॥
 अँनमो व्वष्यर्थि चावष्यर्थि च स्वाहा ॥१०४॥
 अँनमो व्वात्याय च रेष्म्याय च स्वाहा ॥१०५॥
 अँनमो व्वास्तव्याय च व्वास्तुपाय च स्वाहा ॥१०६॥
 अँनमः सोमाय च रुद्राय च स्वाहा ॥१०७॥
 अँनमस्ताम्राय चारुणाय च स्वाहा ॥१०८॥
 अँनमः शङ्खवे च पशुपतये च स्वाहा ॥१०९॥
 अँनमः उग्रात च भीमाय च स्वाहा ॥११०॥
 अँनमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च स्वाहा ॥१११॥
 अँनमो हन्त्रे च हनीयसे च स्वाहा ॥११२॥
 अँनमो व्वृक्षेवभ्यो हरिकेशेवभ्यः स्वाहा ॥११३॥
 अँनमस्ताराय स्वाहा ॥११४॥

अँ॑नमः शम्भवाय च मयोभवाय च स्वाहा ॥११५॥
 अँ॑नमः शङ्कराय च मयश्कराय च स्वाहा ॥११६॥
 अँ॑नमः शिवाय च शिवतराय च स्वाहा ॥११७॥
 अँ॑नमः पार्याय च वार्याय च स्वाहा ॥११८॥
 अँ॑नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च स्वाहा ॥११९॥
 अँ॑नमस्तीत्थर्याय च कूल्लयाय च स्वाहा ॥१२०॥
 अँ॑नमः शष्प्याय च फेन्याय च स्वाहा ॥१२१॥
 अँ॑नमः सिक्त्याय च प्रवाह्याय च स्वाहा ॥१२२॥
 अँ॑नमः किठ० शिलाय च क्षयणाय च स्वाहा ॥१२३॥
 अँ॑नमः कपर्दिने च पुलस्तये च स्वाहा ॥१२४॥
 अँ॑नम० इरिण्णयाय च प्रपत्थयाय च स्वाहा ॥१२५॥
 अँ॑नमो व्वज्जयाय च गोष्टृचाय च स्वाहा ॥१२६॥
 अँ॑नमस्तल्प्याय च गेह्याय च स्वाहा ॥१२७॥
 अँ॑नमो हृदयाय च निवेष्याय च स्वाहा ॥१२८॥
 अँ॑नमः काटव्याय च गद्बरेष्टृठाय च स्वाहा ॥१२९॥
 अँ॑नमः शुष्कक्याय च हरित्याय च स्वाहा ॥१३०॥
 अँ॑नमः पाठ० छसयाय च रजस्याय च स्वाहा ॥१३१॥
 अँ॑नमो लोप्याय चोलप्याय च स्वाहा ॥१३२॥
 अँ॑नम० ऊर्वर्याय च सूर्वर्याय च स्वाहा ॥१३३॥
 अँ॑नमः परण्याय च पण्णशदाय च स्वाहा ॥१३४॥
 अँ॑नम० उद्गुर्माणाय चाभिगृहते च स्वाहा ॥१३५॥

ॐ नमऽ आखिदते च प्रखिदते च स्वाहा ॥१३६॥
 ॐ नमऽ इषुकृदृभ्यो धनुष्कृदृभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥१३७॥
 ॐ नमो वः किरिकेवभ्यो देवानाऽप्तं हृदयेवभ्यो स्वाहा ॥१३८॥
 ॐ नमो विवचिन्वत्केवभ्यो देवानाऽप्तं हृदयेवभ्यः स्वाहा ॥१३९॥
 ॐ नमो विवक्षिणत्केवभ्यो देवानाऽप्तं हृदयेवभ्यः स्वाहा ॥१४०॥
 ॐ नमः आनिर्हतेवभ्यो देवानाऽप्तं हृदयेवभ्यः स्वाहा ॥१४१॥
 ॐ द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसाम्रजानामेषा-
 म्पशूनाम्मा भेष्मा रोड्मो च नः किञ्चनाममत् स्वाहा ॥१४२॥
 ॐ इमा रुद्रद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ।
 यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वम्पुष्टुड्ग्रामेऽ अस्थन्न-
 नातुरम् स्वाहा ॥१४३॥

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।
 शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे स्वाहा ॥१४४॥
 ॐ परि नो रुद्रस्य हेतिवृणकक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरवायोः ।
 अव स्त्थिरा मवदृभ्यस्तनुष्व मीड्ढवस्तोकाय तनयाय
 मृड स्वाहा ॥१४५॥

ॐ मीढुष्टुम शिवतम शिवो नः सुमना भव परमेवृक्षऽआयुधन्नि-
 धाय कृत्ति व्वसानऽआचर पिनाकम्बिवदागहि स्वाहा ॥१४६॥
 ॐ विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽ अस्तु भगवः ।
 यास्ते सहस्रठ० हेतयोऽन्त्यमस्मन्निवपन्तुताः स्वाहा ॥१४७॥
 ॐ सहस्राणि सहस्रशो वाहौस्तव हेतयः ।
 तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कुधि स्वाहा ॥१४८॥

ॐ असङ्गत्याता सहस्राणि य रुद्राऽ अधि भूम्याम् ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१४६॥
 ॐ अस्मिन्महत्यण्ठेऽन्तिक्षे भवाऽ अधि ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५०॥
 ॐ नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः दिवर्थ० रुद्राऽ उपश्चित्राः ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५१॥
 ॐ नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽ अधः क्षमाचराः ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५२॥
 ॐ ये वृक्षेषु शिष्पञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५३॥
 ॐ ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५४॥
 ॐ ये पथाम्पथिरक्षय० ऐलवृदाऽ आयुर्युधः ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५५॥
 ॐ ये तीर्त्थानि प्रचरन्ति सूकाहस्ता निषङ्गिणः ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५६॥
 ॐ येऽन्नेषु विविदध्यन्ति पात्रेषु पिवतो जनान् ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५७॥
 ॐ य० एतावन्तश्च भूयाठ० सश्च दिशो रुद्रा विवस्तिथे ।
 तेषाठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥१५८॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रदेवभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिष्वः । तेवभ्यो
दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोदृध्वाः ।
तेवभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु से नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो
यश्चच नो द्वेष्टिट् तमेषाऽजम्भे ददृष्मः स्वाहा ॥१५९॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रदेवभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां व्वातऽइष्वः ।
तेवभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोदृध्वाः ।
तेवभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु से नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो
यश्चच नो द्वेष्टिट् तमेषाऽजम्भे ददृष्मः स्वाहा ॥१६०॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रदेवभ्यो ये पृथिव्वयां येषामन्नमिष्वः ।
तेवभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्द-
शोदृध्वाः । तेवभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते
यन्द्विष्मो यश्चच नो द्वेष्टिट् तमेषाऽजम्भे ददृष्मः स्वाहा ॥१६१॥

ॐ भूः, अँ भुवः, अँ स्वः । अँ व्ययर्थं सोम० (८ मन्त्राः)
(पाठमात्रम्) ।

ॐ उग्रश्व० (७ मन्त्राः) (पाठमात्रम्) ।

ॐ व्वाजश्व० ॥ १ ॥ प्राणश्व० ॥ २ ॥

ओजश्व० ॥ ३ ॥ उयैर्व्यं च० ॥ ४ ॥ स्वाहा ।

(२) ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐ सत्यश्व० ॥ १ ॥ ऋतश्व० ॥ २ ॥ यन्ता च० ॥ ३ ॥

शश्व० ॥ ४ ॥ स्वाहा ।

(३) अँनमस्ते० (१६१) आहुतयः) ।

अँऊक्त्त्वं० ॥१॥ रयिश्च० ॥२॥ वित्तश्च० ॥३॥

ब्रीहयश्च० ॥४॥ स्वाहा ।

(४) अँनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँअश्मा च० ॥१॥ अग्निश्च० ॥२॥ व्वसु च० ॥३॥

स्वाहा ।

(५) अँनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँअग्निश्च म॒ इन्द्रश्च० ॥१॥ मित्रश्च० ॥२॥

पृथिवी च० ॥३॥ स्वाहा ।

(६) अँनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँअर्ठ०शुश्च० ॥१॥ आग्रयणश्च० ॥२॥ सूचश्च० ॥३॥ स्वाहा ॥

(७) अँनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँअग्निश्च० ॥१॥ व्रतश्च० ॥२॥ स्वाहा ।

(८) अँनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँएका च० ॥१॥ स्वाहा ।

(९) अँ नमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँचतस्तश्च० ॥१॥ स्वाहा ।

(१०) अँनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

अँच्यविश्च० ॥१॥ पष्ठ॒ठवाट् च० ॥२॥ स्वाहा ।

(पुनः) अँयज्जाग्रतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ सहस्रशीर्षा० (१६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ अदूभ्यः सम्भृतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ आशुः शिशानः (१२ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ विव्व्राढ् वृहत् पिवतु० (१७ मन्त्राः) स्वाहा ।

(११) ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐ व्वाजाय स्वाहा० ॥१॥

आयुर्घ्यज्ञेन कल्पताम्० ॥२॥ स्वाहा ।

ॐ ऋचं वाचम्० स्वाहा ।

ॐ यन्मे छिद्रम्० स्वाहा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितु० स्वाहा ।

ॐ क्यानश्चित्रः० स्वाहा ।

ॐ कस्त्वा सत्यो मदानाम्० स्वाहा ।

ॐ अभी षु णः० स्वाहा ।

ॐ क्या त्वन्न॒ ऊत्यामि० स्वाहा ।

ॐ इन्द्रो विश्वस्य० स्वाहा ।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः० स्वाहा ।

ॐ शन्नो व्वातः पवताठ० शन्नः० स्वाहा ।

ॐ अहानि शं भवन्तु नः स्वाहा ।

ॐ शन्नो देवीः० स्वाहा ।

ॐ स्योना वृथिवी स्वाहा ।

ॐ आपो हि पूर्णा० स्वाहा ।
 ॐ यो वः शिवतमो रसः स्वाहा ।
 ॐ तस्माऽ अरं गमाम वः० स्वाहा ।
 ॐ द्यौः शान्तिः० स्वाहा ।
 ॐ द्वृते द्वर्ठ०ह मा मित्रस्य मा चक्षुषां० स्वाहा ।
 ॐ द्वृते द्वर्ठ०ह मा ज्योक्ते० स्वाहा ।
 ॐ नमस्ते हरसे शोचिषे० स्वाहा ।
 ॐ नमस्तेऽ अस्तु विद्युते० स्वाहा ।
 ॐ यतोयतः समीहसे० स्वाहा ।
 ॐ सुमित्रिया नऽ आपः० स्वाहा ।
 ॐ तच्चक्षुर्द्विवहितम्० स्वाहा ।
 ॐ सद्योजातम्० (५ मन्त्राः) [पाठमात्रम्] ।
 ततः पद्मन्यासं कुर्यादिति ।

॥ इति रुद्रयाग स्वाहाकार मंत्रा समाप्तः ॥

अथ सूर्यागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ विब्राद् वृहत्पिवतु सोम्यं मद्ध्वायुर्धयज्ञपताव-
विहृतम् ॥ व्वातजृतो योऽ अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुषोऽ
पुरुधा चिराजति ॥ १ ॥

उदुच्यं जातवैदसं देवं व्वहन्ति केतवः ॥ दृशे विव-
स्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ ॥ अनु । त्वं
व्वरुण पश्यसि ॥ ३ ॥

दैवव्यावद्धव्यूऽ आगर्ठ० रथेन सूर्यत्वचा ॥
मद्ध्वा यज्ञर्थ० समञ्जाथे ॥ तं प्रत्नथाऽयं व्वेनश्चित्रं
देवानाम् ॥ ४ ॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा उज्येष्टताति वहिंषदर्थ०
स्वर्विदम् ॥ प्रतीचीनं व्वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु-
यासु व्वर्द्दसे ॥ ५ ॥

अयं व्वेनश्चोदुयत्पृश्नगन्भी उज्योतिर्जरायू रजसो
व्विमाने ॥ इममपाऽ सङ्गर्यस्य शिशुन्ति विप्रा मतिमी
रिहन्ति ॥ ६ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मिमत्रस्य व्वरुणस्याग्नेः ॥

आप्रा व्यावापृथिवीऽ अन्तरिक्षर्थोऽ सूर्योऽ आत्मा जगतस्त-
स्थुपश्च ॥ ७ ॥

आ नउ इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविदा
देवो एतु ॥ अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगद-
भिपित्वे मनीषा ॥ ८ ॥

यदद्य कच्च बृत्रहन्तुदगाऽ अभि सूर्य ॥ सर्वं तदिन्द्र
ते व्वशे ॥ ९ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्ठृदसि सूर्य ॥ विश्व-
माभासि रोचनम् ॥ १० ॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मदृध्या कर्त्तोर्वितर्तर्थो
सञ्जभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री व्वासस्तनुते
सिमस्मै ॥ ११ ॥

तन्मन्त्रस्य व्वरुणस्थाभिचक्षे सूर्योऽरूपं कृणुते घोरुप-
स्त्वे ॥ अनन्तमन्त्यद्वशादस्य पाजः कृष्णमन्त्यद्वरितः
सम्मरन्ति ॥ १२ ॥

वएमहाँ२ ॥ असि सूर्य बद्धादित्य महाँ२ ॥ असि ॥
महस्ते स्त्रो महिमा षनस्यतेऽद्वा देव महाँ२ ॥ असि ॥ १३ ॥

वट् सूर्यं अवसा महाँ२ ॥ असि सत्रा देव महाँ२ ॥
असि ॥ मद्वा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिर-
दावस्यम् ॥ १४ ॥

आयन्तः इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ॥ व्वसूनि
जाते जनमानः ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १५ ॥

अद्या देवाः उदिता सूर्यस्य निर्ठ० हसः पिपृता निर-
वद्यात् ॥ तन्नो मित्रो व्वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः
पृथिवीः उत द्यौः ॥ १६ ॥

आ कृष्णेन रजसा व्वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ॥
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन ॥ १७ ॥

॥ इति सूर्ययाग स्वाहाकारमंत्राः समाप्ताः ॥

अथ गणेशायागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ आ तू नऽ इन्द्र वृत्रहन्त्समाकमद्वमामहि ।
महान्महीभिरुतिभिः ॥ १ ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वाऽ असि स्पृधः । अशस्त्रिहा
जनितु विश्वतूरमि त्वं तूर्यं तहस्यतः ॥ २ ॥

अनु ते शुष्मन्तुग्यन्तमीयतुः क्षोणी शिशुन्न
मातरा । विश्वास्ते स्पृधः शनथयन्त मन्त्यवे वृत्रं यदिन्द्र
तूर्व्वसि ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानां प्रच्येति सुम्मनमादित्यासो भवता मृड-
यन्तः । आवोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्त्यादर्थं होशिश्वदा
व्वरिवोविचरासत् ॥ ४ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुमिष्ट्वर्थं शिवेभिरथ परिपाहि
नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिन्नोऽ
अघशर्थं सऽ ईशत ॥ ५ ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामदृष्ट्युमिर्मधुमन्तः सुतासः ।
व्वह व्वायो नियुतो याद्यच्छा पिवा सुतस्यान्थसो मदाय ॥ ६ ॥

गावऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्पसुदा । उभा कण्णा
हिरण्यया ॥ ७ ॥

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा
सधस्त्यऽ आ ॥ ८ ॥

॥ इति गणेशायाग स्वाहाकार मंत्राः समाप्तः ॥

अथ प्रजापतियागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ ब्राह्मणमद्य विदेयं षितुमन्तं पैतुमन्यभृषिमार्षेयर्थं०
सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशता॥१॥

मातेव पुत्रं पृथिवीपु रीष्यमग्निं स्वे थोनावभारुषा ।
तां विवश्वैदैवैऋतुभिः संविदानः प्रजापतिविश्वकर्मा
विमुच्चतु ॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेनऽ आवः ।
स बुद्ध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्टाः सतश्च |योनिमसतश्च
विवः ॥ ३ ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेजऽ इन्द्रियर्थं० सुरया सोमः सुतऽ
आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यज-
मानाय धेहि ॥ ४ ॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः
शूरऽ इयव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्धी
धेनुव्वोढानद्वानाशुः ससिः पुरन्विष्योपा जिष्णु रथेष्टाः
समेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः
पञ्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो
नः कल्पताम् ॥ ५ ॥

ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिद्यौः समुद्रसमर्थ० सरः । इन्द्रः पृथिव्यै
व्वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ६ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता वभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्तु व्वर्यठ० स्थाम पतयो
रयीणाम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावा पृथिवीऽ
अनेहसा । पूषा नः पातु दुरिताद्याद्यधो रक्षा माकिन्नोऽ
अघशर्ठ० सऽ ईशत ॥ ८ ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं महद्भयो वैश्यं तपसे
शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय व्वीरहणं पाप्यने क्लावमाक-
यायाऽ अयोग् कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ९ ॥

ब्रह्माणि मे मतयः शर्ठ० सुतासः शुष्मऽ इयर्ति प्रभृतो
मेऽ अद्रिः । आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्त्येमा ही व्वहतस्तः
नोऽ अच्छ ॥ १० ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य वोधि तनय यं
जिन्व । विश्वं तद्द्रद्रं यदवन्ति देवा वृहद्वदेम व्विदथे
सुवीराः । यऽ इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पितान्नपते-
न्नस्य नो देहि ॥ ११ ॥

॥ इति प्रजापतियाग स्वाहाकार मन्त्राः समाप्तः ॥



अथ नवग्रहयागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मत्यंश्च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥१॥
 इमं देवाऽसपत्नर्थं सुवर्धं महते क्षत्राय महते ज्यैष्याय
 महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममृष्य पुत्रममृष्यै
 पुत्रमस्यै चिंशाऽष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानार्थं
 राजा ॥ २ ॥

ॐ अग्निर्मूद्र दिवः कुकृत्पतिः पृथिव्याऽयम् ।
 अपार्थं रेतार्थं सि जिन्वति ॥ ३ ॥

ॐ उद्दुदध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सर्थं सुजेथामयं
 च । अस्मिन्त्सघस्थेऽ अध्युत्तरस्मिन्वन्वेदेवा यनमानश
 सीदत ॥ ४ ॥

ॐ वृहस्पतेऽपति यद्यर्थोऽ अहौद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यदी-
 दयच्छ्रवसाऽ ऋतप्रजात तदस्माकु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥५॥
 ॐ अननात्परिस्त्र सो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत् क्षत्रं पथः सोमं प्रजा-
 पतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं चिंशानार्थं शुक्रमन्धसाऽ
 इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥ ६ ॥

ॐ शनो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये ।

शं य्योरभिस्त्रवन्तु नः ॥ ७ ॥

ॐ क्यानश्चित्रऽ आभुवदूरी सदावृधः सखा । क्या शचिष्टया
वृता ॥ ८ ॥

ॐ केतुं कृष्णन्न केतवे वैशो मर्याऽ अपेशसे । समुषद्विर-
जायथाः ॥ ९ ॥

ॐ ऋग्वकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम् । उवर्बाहुकमिव
वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १ ॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूप-
मश्चिनौ व्यात्तम् । इष्णनिष्पाणामुम्भऽ इषाण सर्वलोकम्भऽ
इषाण ॥ २ ॥

ॐ यदकन्दः प्रथमं जायमानऽ उद्यन्तममुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य वाहूऽउपस्तुत्यं महि जातं
तेऽर्वन् ॥ ३ ॥

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः शनप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि
विष्णोध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ ४ ॥

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेनऽ आवः ।
सबुद्धन्याऽ उपमा अस्य विष्णुः सतश्च योनिमत्तश्च
विवः ॥ ५ ॥

ॐ सजोषाऽ इन्द्र सगणो मरुदिमः सोमं पित्र वृत्रहा शूर
विव्दान् । जहिशत्रू२॥ रथ मृधोनुदस्वाथाभयं कृणुहि
विश्वतो नः ॥ ६ ॥

ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा स्वाहा धर्माय स्वाहा
धर्मः पित्रे ॥ ७ ॥

ॐ कार्पिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽ उन्नयामि । समापोऽ
अङ्गिरग्गत सपोपधीभिरोपधीः ॥ ८ ॥

ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ ९ ॥

ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ॒र ॥ आसादयादिह ॥१॥

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्तानऽ ऊजर्जे दधातन । महैरणाय चक्षसे ॥२॥

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः
शर्म सप्रथाः ॥ ३ ॥

ॐ इदं विष्णुविंचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाठ०
सुरे स्वाहा ॥ ४ ॥

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रठ० हवे हवे सुहवर्ठ० शूरमिन्द्रम् ।
ह्यामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रठ० स्वस्ति । नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५॥

ॐ अदित्यै रासनासीन्द्राण्याऽ उष्णीषः । पूर्णासि धर्माय दीष्वा ॥६॥

ॐ प्रनापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्तु व्वयर्द्ध० स्याम पतयो
रयीणाश० ॥ ७ ॥

ॐ नमोऽस्तु सर्वेभ्यो ये के च पृथिवीमनु येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि
तेभ्यः सर्वेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

ॐ ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो व्वेनऽ आवः ।
स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य चित्पृष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च
चित्पृष्ठः ॥ ९ ॥

॥ इति नवग्रहयाग स्वाहाकार मन्त्राः समाप्त ॥

अथ विश्वाशान्तियागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ ऋचं व्वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं
प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । व्वागोजः सहौजो मयि
प्राणापानौ ॥ १ ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो व्वातितृणं
वृहस्पतिम्में तद्धातु । शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुव्वरेण्यं भग्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

क्या नश्चित्रऽ आभुवदूती सदावृथः सखा । क्या
शचिष्टया वृता ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मर्ठ० हिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा
चिदारुजे व्वसु ॥ ५ ॥

अमी षुणः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं
मवात्यूतिभिः ॥ ६ ॥

क्या त्वं नऽ ऊत्याभि प्रमन्दसे व्वृपन् । क्या
स्तोत्रृभ्यऽ आभर ॥ ७ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽ अस्तु द्विपदे शं
चतुष्पदे ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं च्वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं नऽ इन्द्रो
वृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्मिः ॥ ९ ॥

शं नो व्वातः पवतार्ठ० शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः
कनिकदद्वेवः पर्जन्योऽ अभिवर्षतु ॥ १० ॥

अहानि शं भवन्तु नः शर्ठ० रात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शं नऽ इन्द्राग्री भवतामवीभिः शं नऽ इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं नऽ इन्द्रापूषणा व्वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय
शं योः ॥ ११ ॥

शं नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि
स्तवन्तु नः ॥ १२ ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः
शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता नऽ उल्लेदधातन । महे
रणाय चक्ष से ॥ १४ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशरीरिव
मातरः ॥ १५ ॥

तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्याय जिन्वथ । आपो
जनयथा च नः ॥ १६ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षर्थ० शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोपधयः शान्तिः । व्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः
९

शान्तिव्रक्षं शान्तिः सर्वर्थं० शान्तिः शान्तिरे व शान्तिः सा
मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

द्वते द्वर्ठ०ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षन्ताय् । मित्रस्थाहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा सपीक्षामहे ॥ १८ ॥

द्वते द्वर्ठ०ह मा । ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते
सन्दृशि जीव्यासत् ॥ १९ ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽ अस्त्वर्चिषे । अन्यास्तेऽ
अस्मतपन्तु हेतयः पावकोऽ अस्मदभ्यर्थ० शिवो भव ॥ २० ॥

नमस्तेऽ अस्तु विवद्युते नमस्ते स्वनयित्वै । नमस्ते॥
भगवन्नस्तु यतः स्वः समीह से । २१ ॥

यतो यतः समीह से ततो नोऽ अभयं कुरु । शं नः
कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२ ॥

सुविधिया नऽ आप० ओपधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै
सन्तु योऽस्मान्देष्टि यं च व्ययं द्रिष्मः ॥ २३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमूच्चरत् । पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शतर्थ० शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः
शतात् ॥ २४ ॥

॥ इति विश्वशांतियाग स्वाहाकार मंत्राः समाप्तः ॥

विष्णुयागादि-यज्ञों में चतुर्वेदोक्तादि मन्त्रों द्वारा
योगिनी का स्थापन तथा महारुद्रादि यज्ञों में
चतुर्वेदोक्त मंत्रों द्वारा वास्तु पूजन्

विष्णुयागादि यज्ञों में चतुर्वेदोक्तादि मंत्रों द्वारा योगिनी का स्थापन

(१) ऋग्वेद—तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति धियज्ञिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदव्धः स्वस्तये ॥१॥ यजुर्वेद—तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति धियज्ञिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदव्धः स्वस्तये ॥ २ ॥ (सामवेद । आवो राजा । नमध्व । रस्यरुद्राम् । हो । ता । राम । स । त्ययजाइम् । रोदसीयोः अभिपु । रा । तनयि । त्नोरचित्तात् । हिरण्य । रू ॥ पा ३ मव । सा ५४३ इ ॥ ३ ॥) अथर्ववेद—ईशां वो मरुतो देव अदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां वा इन्द्रशाभिश्च घाता मित्रः ग्रजापतिः । ईशां व ऋषयऽच क्रमित्रेष समीक्षयन्त्रदिते अबुंदे तव ॥ ४ ॥ एहोहि यज्ञेऽत्र गजानने त्वं सिन्दूररंवर्णे गणपेत्नुकूले । रक्तास्वरे रक्तविलोचने च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ गजाननाये नमः—गजाननामावा० ॥ ५ ॥

(२) ऋग्वेद—ब्रह्मा देवानां पदवी । कवीनामृषिविप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वघितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभेत् ॥१॥ यजुर्वेद—आ ब्रह्मन्नाह्याणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइष-व्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीं तो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योग-क्षेमो नः कल्पताम् ॥ २ ॥ (सा०) ब्रह्मा । ब्रा २३ ह्या । जयानं प्रथमं पुरस्तात् ॥ विसाइ । वा २३ इसी । मतः सुरुचोवेन आवः । सदू । सा२४ बू । न्विया उपमा अस्य वा इष्ठाः ॥ सताः । सा २३ ता । चयोनिम-सतश्च वा इ वा ३४३ । ओ २३४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ स्वघितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभेत् ॥ अथर्ववेद—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं

विष्णुयागादि यज्ञों के चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा योगिनों का स्थापन १३

पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽउपमा अस्य
विष्टाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ ४ ॥ आवाहये सिंहमुखीं सुरूपां
सर्वांतिहन्त्रीं सकलार्थदात्रीम् । विद्युन्निभां सर्वजगत्प्रणम्यां रक्षाध्वरं
नो वरदे नमस्ते ॥ सिंहमुख्यै० सिंहमुखीमा० ॥ ५ ॥

(६) ऋग्वेद—महाँ॒ इन्द्रो य ऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिर्मा॑ इव ।
स्तोमैर्वृत्सस्य वावृथे ॥ १ ॥ यजुर्वेद—महाँ॒ इन्द्रो य ऽओजसा पर्जन्यो
वृष्टिर्मा॑ इव । स्तोमैर्वृत्सस्य वावृथे । उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैषते
योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ २ ॥ (सा.) इन्द्र हाउ । इा हो इ । पर्वता बृहता
रथा २ इता २३ वा ३ । ऊ ३४ पा ॥ वामीर्हा॑ उ । हा हो इ । इष आ
वह तूँ सुवा २ इरा २३ वा ३ । ऊ ३४ पर ॥ वीत् हाउ । हा हो इ ।
हृग्णानध्वरे सुदा २ इ वा २ उवा ३ । ऊ ३४ पा ॥ वर्द्धा॑ हाउ । हा हो ।
थांगीभिर्गिड्यामदा २० ता २ उवा ३ ॥ ऊ ३२३४ पा ॥ ३ ॥ (अ०)
महाँ॒ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिर्मा॑ इव । स्तोमैर्वृत्सस्य वा वृथे ॥ ४ ॥
एहोहि गृध्रास्य इहामरेशि प्रचण्डदैतेय विमर्दने त्वम् । कुरु प्रसाद मयि
देवि मातः पूजा त्वदर्था रचित्वा परेयन् ॥ गृध्रास्यायै० गृध्रास्यामा० ॥ ५ ॥

(४) ऋग्वेद—कदूरुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे । वो चेम शंतमं
हुदे ॥ १ ॥ यजुर्वेद—सद्योजातो व्यमिमीत यज्ञमग्निदेवानामभवत्पु-
रोगाः । अस्य होतुः प्रदिश्यतस्य वाचि स्वाहा॑ वृत्तपु॑ हविरदन्तु देवाः
॥ २ ॥ (सा.) तड्डीहोवा ॥ गाया॒ २ सुताइसा॑ २३४ चा॑ । पुरुहूता॑
यसात्वा॑ १ ना॒ २ इ ॥ शंयत् । हा॑ । औ॑ ३ होई॑ः गा॑ २२६ वा॑ इ ॥ ना॒
२ गा॑ २३४ औ॑ हो वा॑ ॥ ए॑ ३ । किने॑ २३४५ ॥ ३ ॥ (अ.) देवस्य
सवितुः सर्वे कर्म कृणवन्तु मानुषाः । शं॑ नो भवत्त्वप ओषधीः शिवा॑ ॥ ४ ॥
आवाहये त्वामिह काकतुण्डे यज्ञे चतुर्वेद भवे सदैव । कोष्टे तुरीये वसर्ति
विघस्त्वं पूजां तवाहं विदधे विनम्रः ॥ काकतुण्डिकायै० काकतुण्डि-
कामा० ॥ ५ ॥

(५) (ऋ०) वपुर्नं तच्चकिनुषे चिदस्तु समानं नाम षेनु पत्य-
भानम् । मर्त्यवन्यद् दो ह से पीपाय सकृच्छुक्र दुदुहे॑ शिनरूधः ॥ १ ॥

(य०) आदित्यं गर्भं पयसा समडग्नि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परिवृद्धिं हरसा माभिमुँस्थाः शतायुषं कृषुः ह चीयमानः ॥ २ ॥
(सा०) उदुत्यम् । ओहाइ । जा । तवे २ दा २३४ साम् । देवं वहा ।
हीकेता २३४ वा: । दा २३४ शे हाइ । वा इश्वायसू । याम् । औ २२
हो वा । हो ५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ०) कालो अश्वो वहति सप्तरिष्मः
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः । तमा रोहन्ति कवयो विष्वश्वितस्तस्य चक्रा
युवनानि विश्वा ॥ ४ ॥ यहोहि यज्ञेऽत्र सरोजहस्ते कल्याणदे रक्तसुखो-
श्रूपीवे । कलापदण्डाख्यघरे प्रसोद विशाध्वरं नः सततं शुभाय ॥ डृश्यो-
वायै० डृश्योवामा० ॥ ५ ॥

(६) (ऋ०) इतो वा सातिमीहसे दिवो वा पार्थिवा दधि । इन्द्रे
महो वा रजसः ॥ १ ॥ (य०) स्वर्णं घर्मः स्वाहा स्वर्णार्किः स्वाहा स्वर्ण
शुक्रः स्वाहा स्वर्णं ज्योतिः स्वाहा स्वर्णं सूर्यः स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०)
अबोविद्या ॥ प्राइः समिवाजना २ नाम् । प्रताइधे ३ तूम् । इवायती
मुषासम् । यहाई ३ वा । प्रवा २ यामुञ्जहानाः ॥ प्रभाना २३ वा: ।
सप्तते नाकमच्छ । इडा २३ भा ३४३ । ओ २३४५ इ । डा ॥ ३ ॥
(अ०) कुहू देवीं सुकृतं विद्यनायसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि । सानो
रथि विश्ववारं नि यच्छाददातु वीरं शतदायमुवर्धयऽम् ॥ ४ ॥ एहोहि
यज्ञेऽत्र सुवाजिग्रीवे विशालनेत्रे भव भूतिकर्त्री । देवान्समावाहय हव्य-
कामान् गृहाण पूजां सततं नमस्ते । हयग्रीवायै० हयग्रीवामा० ॥ ५ ॥

(७) (ऋ०) श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हृयते हृविः । श्रद्धां
भग्यस्य मर्धनि वचसा वेदया मसि ॥ १ ॥ (य०) सत्यं च मे श्रद्धा च मे
जगच्च मे धनं च मे विश्वं च म महश्च मे क्रीडा च मे मोदद्वच मे जातं
च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥
(सा०) तु चेतुना । यता ३३ त्सु २३४ नाः द्राघीया २ ३४ यूः जीवासा
२ इ । जादी २ त्यासा २ः ॥ समहसा २ः । कृणो ३ ता ५ ॥ ना २३४५
॥ ३ ॥ (अ०) वाताज्जातो अन्तरिक्षाविद्यतो ज्योतिषस्परि स नो
हिरण्यजाः शंखः कृशनः पा त्वं हसः ॥ ४ ॥ एहोहि वाराहि विशालरूपे

द्रष्टाग्रलीलोदधृतभूमिके च । पीताम्बरे देवि नमोऽस्तु तुभ्यं गृहाण पूजां
वरदे नमस्ते ॥ वाराह्मी० वाराह्मीमा० ॥ ५ ॥

(८) (क्र०) गौतीमिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदो द्विपदी । सा
चतुर्विष्टी । अष्टापदी नवपदो वसुवृषी सहस्राक्षरा परमे व्याप्तिः ॥ ८ ॥
(य०) भायै दावहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रह्मस्य विष्टपायाभिषेक्तारं
वर्षिष्टाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय वेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरि-
तारठ । सर्वैभ्यो लोकेभ्यः उपसेक्तारम् ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय
वासः पत्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ २ ॥ (सा०) आतू ओ हो । आतू
ओ हो न इन्द्र वृत्ता २३४ हात् । अरुमाकमर्द्दम् । आया २३ ही । गाही
॥ २ ॥ माहा २० माही २३ ॥ भिरु २३४ वा । ता५ इमो६ हाइ
॥ ३ ॥ (अ०) अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणीमि तं ब्राह्मण तमूषि तं सुमेधाम् । आवाहयेऽहं
शरभाननां त्वां समस्तससाऽविधानदक्षाम् । देवाविदवेशि परेशि नित्यं
गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ शरभाननाय० शरभाननामा० ॥ ५ ॥

(९) (क्र०) उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह । प्रादुर्भूतो
जिस्म राष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धि ददातु मे ॥ १ ॥ (य०) जिह्वा म भद्रं
वाङ्महो मनो मन्युः स्वराङ्ग् भामः । मोदाः प्रमोदाऽ अङ्गुलीरञ्जनि
मित्रं मे सहः ॥ २ ॥ (सा०) हा । वा॒ इ॒ हा॒ २३४ । ओ॒ २३४ सो॑ ॥
आरत्ना॒ २३४ सो॑ । माधारापा॒ २३४ ॥ आपो॒ वा॒ २३४ सा॑ । नो॒ अर्षा॑
२३४ सो॑ ॥ आरत्ना॒ २३४ धा॑ । योनीमा॒ २३४ त्ता॑ । स्यासीदा॒ २३४
सो॑ ॥ ऊत्सोदा॒ २३४ इवो॑ । हा॒ इरण्या॒ २३४ या॑ । हा॒ । हा॒ । वो॒ इ॒ हा॒
इ॒ । हा॒ ओ॒ २३४ वा॑ । हा॒ ३४ । ओ॒ हो॒ वा॑ ॥ ए३ । अतिविश्वानि-
दुरितातरमा॒ २३४८ ॥ ३ ॥ (अ०) अङ्गेभ्यस्त उद्दराय जिह्वाया
आस्याऽयते । ददृश्यो गन्धाय ते नमः ॥ ४ ॥ उलूकिके त्वामिह भावयेहं
काश्मीरपाटीरविलेपनाढ्याम् । नानाविधालङ्कुरणोपपन्नां यज्ञे समाग-
न्तुमणेषवन्द्याम् । उलूकिकाय० उलूकिकामा० ॥ ५ ॥

(१०) (ऋ०) अभि प्रवन्त्त समनेव योपाः कल्याण्य १ः समय-
मानासो अग्निम् । घृतस्य धारासमिधो नस्त्वं ता जुषाणो हर्यति जात-
वेदाः ॥ १ ॥ (य०) हिङ्गाराय स्वाहा हिङ्गकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहा-
वकन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा पत्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा ग्राताय
स्वाह निविष्टाय स्वाहो पविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वलगते स्वाहा-
सीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा सर्ठ० हानाय स्वाहा पस्थि-
ताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) अश्वी अश्वी ॥
रथीसु ३ रूपा १ ई ४ त् । गोमा५ यदि । द्राते १ साखा २ । श्वात्रा २
भाजा २ । वयसास चतेसा २३ दा ॥ चन्द्राइर्या६ ती ३ ॥ सा २३ भा
३ म० । ३४३ पो७ ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) यत्ते देवी निर्झृतिराववन्ध-
दाम श्रीवास्वविमोक्षं यत् । तत्ते वि व्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्त-
मद्धि प्रसूतः ॥ ४ ॥ आवाहयेहं शिवपूर्विक्रां त्वां रावां महारावजित-
त्रिलोकीम् । कुरु प्रसादं मम विष्णुयज्ञे गृह्णीष्व पूजां करुणामये च ।
शिवरावायै० शिवारावामा० ॥ ५ ॥

(११) (ऋ०) अद्यौ चित्रौ चित् तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो
गातुमिन्द्र । नि पर्वता अद्यसदो न सेदुस्त्वया दलहानि सुक्रतो रजांसि
॥ १ ॥ (य०) अग्निश्च मे घर्षश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मे ऽश्व-
मेघश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्व-
रयो दिशश्च मे यज्ञन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥ (सा०) पिबासुतस्य रसिनो-
मतस्वाहा ३ ॥ ना २ः । इन्द्रा४ २ गोमता २३-१ हा५ उ । आपिनो६ २ वो ।
घिसावमा० २ । दिये वृषा० २३ । हा५ उ ॥ अस्माठ० अवाँ० २३ । हा५ ॥ तु ते
३ हो० २ । या० २३४ औ होवा० ॥ घियऊ० २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) इन्द्रस्य
वृष्णो वरुणस्य राज्ञ अदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवन-
च्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्यात् ॥ ४ ॥ मयूरिके त्वं निश मेऽध्व-
रेऽस्मिन् लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावे । मयूरिरूपे त्रिदशैकवन्द्ये ममाध्वरं
पाहि वरे नमस्ते ॥ मयूरिकायै० मयूरिकामा० ॥ ५ ॥

(१२) (ऋ०) यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे । प्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥ (य०) पूषन् तव ब्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्तऽ इह स्मसि ॥ २ ॥ (सा०) यज्ञा-यज्ञा । होइ । वा ३ गत्य ए ३४ ॥ हिया ॥ गिरा गिरा । चा २ दक्षसाइ । प्रप्रावयाम् । अमृतं जा ३ । त वे २ दा २३४ साम । प्रियमित्राम् । नशठ० सिषाम् । एहिया । ओ हो २३४५ इ० ॥ दा ॥ ३ ॥ (अ०) विश्वजित् कल्याण्यैऽ मा परि देहि । कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुर्ष्पाच्यच्च नः स्वम् ॥ ४ ॥ आवाहयेहं कमलासनस्थां विशालनेत्रां विकटाननां त्वाम् । सर्वज्ञकल्पां बहुमानयुक्तामागत्य रक्षां कुरु सुप्रसन्ने ॥ विकटा-ननाय० विकटाननामा० ॥ ५ ॥

(१३) ऋ० ईले द्यावा पृथिवी पूर्वचित्तयेऽभिं वर्मि सुहचं यामन्त्रि-ष्टये । याभिर्भरे कार मशाय जिन्वण्य स्ताभिरूषु ऊनिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥ (य०) वेद्या वेदिः समाप्यते वहिषा वर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूपैऽ आप्यते प्रणीतो अग्निरश्विना ॥ २ ॥ (सा०) भूमिः । (त्रिः) । अन्तरिक्षम् । (त्रिः) द्योः । (द्वि: द्य । ३४ । ओहो वा ॥ ए ३ । भूताया २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) प्रोष्ठेश्यास्तल्पेश्या नारीर्या वह्यशीवरीः । क्षियो याः पुण्यगन्धस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामष्टवक्त्रां कल्याणदात्री शुभकारणीं मे प्रसादये त्वां बहुचाटुकारैर्गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ अष्टवक्त्राय० अष्टवक्त्रामा० ॥ ५ ॥

(१४) (ऋ०) अभिं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवां आ सा दयादिह ॥ १ ॥ (य०) अयमस्मिः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवो रयीणाम् ॥ २ ॥ (सा०) अग्नीठ० होतारं मन्ये । दा २३८ । स्वन्तं वसोः सू नुम । सहसोजा ३ तावे १ दासा २ म् । विप्रजा ३ तावे १ दासा २ म् । य ऊर्ध्वर्या ३ सूवधवारा २ः । देवो देवा ३ चाया १ कृपा २ । घृतास्याविभ्राष्टिमनुशु । क्राशो १ चिपारः । आजूह्वा ३ ना ३ ॥ स्या २३ सा ३ । पा ३४५ इपो इहाइ ॥ ३ ॥ (अ०) सोमेन पूर्णं कलशं विभषि त्वस्य रूपाणं जनिता पंशुनाम् । शिवास्ते सन्तु प्रजन्वऽ इह या

इमा न्य १ सभभ्यं स्वधिते थच्छ या अमूः ॥ ४ ॥ आवाहये सुन्दरि कोटराक्षि त्वामत्र यज्ञे भव तापहारिणि । राजप्रजावंशकरी प्रसन्नां ममाध्वरं पांहि वरे नमस्ते ॥ कोटराक्ष्यै० कोटराक्षीमा० ॥ ५ ॥

(१५) (ऋ०) उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । यथा वयमादित्य ब्रते तवानागसो अदितये स्याम् ॥ १ ॥ (य०) इमं मे वरुण श्रुधी हवमन्त्राच मृडय । त्वामवस्युराच के ॥ २ ॥ (सा०) यदाकदा च माहा ३ ॥ द्वूषा २ इस्तोता २ । जराइ । तमतियः । आदिद्वन्द्वा । औहों ३ हाँ ३ हा ३ इ । तादा २ रु २३४ णाम् । विपागिरा ॥ धर्त्तर्वया । औहों ३ हा ३ । हाइ ॥ त्रातानाम् । इडा २३ भा ३४३ औ २३४२ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ०) अम्बयो यन्त्यध्वर्भज्जमियो अध्वरीयताम् । पृच्छतीमधुना पयः ॥ ४ ॥ ८ हृहि कुब्जे दुरितीघ ना॑शनि सदानुकूले कलहंसजामिनि । मां पाहि दीनं शरणागतं च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ कुब्जायै० कुब्जामा० ॥ ५ ॥

(१६) (ऋ०) यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः सं पिबते यमः । अन्ना नो वश्पृतः पिता पुराणाँ अनु वेनात् ॥ १ ॥ (य०) यमाय त्वा सूयस्य त्वा तपसे । देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सर्ठ० स्पृशरपाहि । अविरसि शोचिरसि तपऽसि ॥ २ ॥ (सा०) आ २ याम् । अयायम् । औ ३ हो ३ इ । आ २ इ । ऊ १ । ना के सुपाणं पुपयात्पतत्ताम् । पतत्तम् । औ ३ हो १ इ । आ १ इ । ऊ २ ॥ आ २ याम् । अयायम् । औ ३ हो १ इ । आ २ इ । ऊ २ ॥ हृदावेनांतो अभ्यचाक्षतत्वा । क्षतत्वो ३ । हो १ इ । आ २ इ । ऊ २ ॥ आ २ याम् । अयायम् । औ ३ हो १ इ । आ २ इ । ऊ २ ॥ हिरण्यपाक्षं वरुणास्यदूताम् । स्यदूतम् औ ३ हो ५ इ । आ २ इ । ऊ २ ॥ आ २ याम् । अयायम् । औ ३ हो १ इ । आ २ इ । ऊ २ । यमस्य घोनी शकुनां भुरण्युम् । औ ३ हो १ इ । आ २ इ । ऊ २ । आ २ याम् । अयायम् औ ३ हो १ इ । आ ३ इ । ऊ २ । वाहा ३१६ वा २३ ॥ ए ३ । दिवम् । ए ३ । दिवा २३४५ म ॥ ३ ॥ (अ०) हिंकृणवती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् । गौरमी-

मेदभि वत्सं मिषन्तं मूष्मनिं हिङ्कणोन्मातवाऽ ॥ ४ ॥ एहोहि दुर्गे
विकटाक्षिनाम्नि प्रभावयास्मानिह यज्ञकामान् । संसारदुःखौघविनाशिके
च रक्षाध्वरं नो वरदे नमस्ते ॥ विकटाक्ष्यै० विकटाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(१७) (ऋ०) गन्धवं इत्था पदमस्थ रक्षति पाति देवानां जनि-
मान्यदभुतः । गृध्णाति रिपुं निघया निघापतिः सुकृतमा भधनो भक्ष-
माशत ॥ १ ॥ (य०) यमेष दसं त्रितः एनमायुलगिन्द्र एणं प्रथमोऽ-
अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वोऽ अस्य रक्षतामगृब्धात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट
॥ २ ॥ (सा०) गायन्तित्वा गायत्रिण आ ॥ अर्चन्त्यर्कमर्का॒ २३ इणाः॑ ॥
ब्रह्माणस्तवा॒ २ हो॑ १ इ ॥ शतक्रा॒ २४ ता॑ ३ । उद्भू॑ शमिवया॒ १ इपो॑ ३
रे ॥ उद्भू॑ शा॒ २५ मी॑ ॥ वाया॑ ३५ उवा॑ ४ । उष । मा॑ २ इरो॑ ३५ हा॑
इ ॥ ३ ॥ (अ०) स्त्रियः सतीस्तां रमे पुंस आहुः पश्यदक्षणवान्न॑ व
चेतदन्धः । कवियः पुत्रः सु ईमा॑ चिकेत यस्ता॑ वजानात्स पितृष्पत्तस्तृ॑
॥ ४ ॥ एहोहि शुष्कोदरि॑ सुन्दार त्वं॑ समस्तदैतेयनिषदायत्रि॑ । आगत्य
नः पालय दुःखितांश्च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ शुष्कोदयै० शुष्को-
दरीमा० ॥ ५ ॥

(१८) (ऋ०) मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार
पृथिवीमुत द्याम् । मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि॑ चष्टे॑ मित्राय हव्यं धृतवज्जुहोत
॥ १ ॥ (य०) मित्रस्य चष्टणी॑ धृताऽवो॑ देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्र-
श्रवस्तमम् ॥ २ ॥ (सा०) आनो॑मत्रा॑ । वरुणा॑ ३ । ओ॑ होवा॑ ३२४ ॥
धृतैगंध्यूतमु॑ । क्षता॑ ३ म् । ओ॑ होवा॑ २ ॥ माध्वारजा॑ सिस॑ ३ ।
ओ॑ होवा॑ २ । क्रनु॑ । इडा॑ २३ भा॑ २४३ । ओ॑ २३४५ इ ॥ डा॑ ३ ॥ ४ ॥
(अ०) मित्रावहणयोर्मगिस्थ वपां॑ शूक्रमापो॑ देवीवर्चो॑ अस्मासु॑ धत्त
प्रजापतेर्वो॑ धाम्नास्मै॑ लोकाय सादये॑ ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं॑ ललदाद्य॑ ज
ह्वानाम्नी॑ सुदेवीं॑ चपलां॑ सुनेत्राम् । नानाविद्वास्वादनतत्परां॑ च गृहाण
पूजां वरदे नमस्ते ॥ ललज्जिह्वाय॑ ललज्जिह्वामा० ॥ ५ ॥

१९ (ऋ०) दिवस्पृथिव्योरव आ॑ वृणीपहे॑ मातृन्॑ त्सिन्धून्॑ पर्वता-
च्छर्वं जावतः ॥ १ ॥ (य०) अमे॑ ब्रह्म॑ गृद्धणोष्व धरुणमस्यत्तरिष्ठं॑

दृठ० ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवर्नि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य ववाय ।
घर्त्वमसि दिर्व दृठ० ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृ-
व्यस्य वधाय । विश्वाम्यस्त्वाशाद्येऽ उपदधामि चित्तस्थोऽधर्वंचितो
भुगूणामज्जिरसां तपसा तप्यदध्वम् ॥ २ ॥ (सा०) अभिन्नूताम् । वृणी-
महाइ । होतारा २३० वी । वादेदसाम् । अस्य या २३ ज्ञा । आ । ओ ३
होवा । स्यासुक्रुतम् । इडा २३ भा ३४३ । ओ २३४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥
(ज०) आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्ज पुष्ट्रवस्वावेशयनी अमावास्याऽये
हविषा विधे मोर्ज दुहाना पयसा न आगन् ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं भवती
श्वदंष्ट्रानाम्नी शनो मूर्तिधरा महोग्राम् । अत्युग्ररूपां महदाननां च विशा-
घरं नो वरदे नमस्ते ॥ श्वदंष्ट्रायै० श्वदंष्ट्रामा० ॥ ५ ॥

(२०) (ऋ०) भवा मित्रो न शेष्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया
व सप्तथाः । अघा ते विष्णो विदुषा चिदर्थः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हवि-
ज्ञता ॥ १ ॥ (य०) भग प्रणेतभंग सत्यराधो भगेमां विष्यमुदवा दद्नः ।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वर्भग भ्रन्तभिन्नृवन्तः स्याम ॥ २ ॥ (सा०)
अभिरौहोवाहाई । वृत्राणि । जाङ्घा ३ नात् । औ हो ३ वा ३ । द्रविणा
२३४ स्युः । ओ इ वो इपन्यया २ । समाये ३ । धा २ः शू २३४ औ हो
वा । क्रयाहुता २३४५ः ॥ ३ ॥ । अ०) सिन्धुपत्ती सिन्धुराज्ञीः सर्वा या
नद्य १ स्थन । दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजाम है ॥ ४ ॥ आवाहये
त्वामिह वानराननां प्रियां हनुमद्विदुषो महामते । देवि त्वमस्माः परि-
पाहि नित्यं श्रीरामभक्ते सततं शिवाय ॥ वानराननायै० वानरा-
ननामा० ॥ ५ ॥

(२१) (ऋ०) रात्री व्यरब्यदायती पुरुत्रा देव्य १ क्षमिः । विश्वा
अधि श्रितोऽधित ॥ १ ॥ (य०) सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्या:
सीद । भासान्तरिक्षमापुण ज्योतिषा दिवमुत्तमान तेजसा दिश उद्दृ दृठं
ह ॥ २ ॥ (सा०) नित्वामग्राइ । मनुर्द्वा २३४ धाइ । ज्योतिर्जना ।
या शश्वाता २ इ । दी । दाइ । यक ष्वात्रहृतजा ३ । त ऊ रक्षा २३५

विष्णुयागादि यज्ञो में चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा योगिनों का स्थापन १४६

इता ॥ थष्ममस्या २३ ॥ ता २ इ कृ २३४ ओ होवा ॥ षटा २३४ याः ॥ ३ ॥ (अ०) तद्भद्राः समगच्छन्तवशा देष्टपथो स्वधा । अथर्वा यत्र दीक्षितो बहिषास्त हिरण्यये ॥ ४ ॥ एह्येहि ऋक्षाक्षिभवानि नित्यं विनाशायास्माकमधं समन्तात् । हीनप्रबोधं शरणागतं मां त्रायस्व कल्याणं परे नमस्ते ॥ ऋक्षाक्षये० ऋक्षाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(२३) (ऋ०) उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञारते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥ (य०) पितृभ्यः स्वधायिवभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिवभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिवभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्पितरोऽमीमदन्तं पितरोऽती वृपन्तं पितरः पितरः शून्धध्वम् ॥ २ ॥ सा० यद्वाङ् २३ विश्वतिः शिताः ॥ सुप्रीतोमनुषोविशे ॥ विश्वा इदा ३२ यीः ॥ ब्रतिरक्षा । सिसेघता । ओ ३ होवा हो ५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ०) पूर्णं नारि प्र भर कुंभमेतं घृतस्य धारा ममृतेन संभृताम् । इमां पातृ-नतेमुना समडग्धीष्टापूतैर्मभि रक्षात्येनाम् ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिहके-कराक्षीं शुभाननां दिव्यगुणार्णवां चे । शमुद्रजातां परमार्थदात्रीं त्रायस्व हेभार्गवनन्दनेऽस्मान् ॥ केकराक्षयै० केकराक्षीमा० ॥ ५ ॥

(२३) (ऋ०) क्षुतिप्रसामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निरुद्धं मे गृहात् ॥ १ ॥ (य०) या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ता भिचाक-शीहि ॥ २ ॥ (सा०) चन्द्रमाअप्सुवा ॥ तरा । सुपर्णो धावते दा २३ इ वी । न वा २३ होइ । हिरण्यनेमयः परं विन्द । तिविद्यता २३ । वित्तर्ठ० होइ । म आ २३ हों ॥ स्यरो २३ । दा २ सा १३४ ओ होवा ॥ ऊ ३२३४ पा ॥ ३ ॥ (अ० , उहुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाघमं वि मध्यमं श्रथाय । अघा वयमादित्य नते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ आवाहये त्वा-मिह देवपुत्री वृहन्मुखीं किन्नरगीयमानाम् । केयूरमाणिवयविभूषिताञ्जी-मनोरमां सवसुखादधात्रीम् ॥ वृहत्तुण्डायै० वृहन्तुण्डामा० ॥ ५ ॥

(२४) (ऋ०) तमिद् घनेषु हितेष्वविवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ १ ॥ (य०) वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतान्नः सुरावसः ॥ २ ॥ (सा०) आवोराजा । नमध्व । रस्य । रुद्राम् । हो । ता । राम् । स । त्वय जा ३ म् । खोदसीयोः । अभिपु । रा । तनयि । त्नोरचिन्तात् ॥ हिरण्य । रु ॥ पा ३ मव । सा ३४३ इ । का ३ र्ण॑ ५ ध॒ ध॒ ध॒ ध॒ ६५६ म् ॥ ३ ॥ (३८०) वाताज्ञातो अन्तरिक्षा-द्विद्युतो ज्योतिषस्परि । सन्ते हिरण्यजाः शंखः कृशनः पात्वं हसः ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेऽसुरराज पुत्रि सुरप्रिये सर्वभयापहे त्वम् । सुरप्रिये योगिनि दिव्य देहे नमामि मातस्तव पादपङ्क्तजम् ॥ सुरप्रियायैः सुरप्रियामा ॥ ५ ॥

(२५) (ऋ०) स्तोत्रमिन्द्रो मरुदगणस्त्वष्टुमान् मित्रो अर्यमा । इमा हृष्या जुषन्त नः ॥ १ ॥ (य०) हर्ठ० सः शुचिपद्मसुरन्तरिक्षसदहाता वेदिषदतिथिर्दुर्गोणसत् । नृषडः सद्वत्सद्वयोमप्राप्नासदवजा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ २ ॥ (सा०) हा उ हो वा । (त्रिः) । परात्पर-मैरय । ता । (द्वेत्रिः) । यज्ञायथाः । अपूर्विष्या । अपूर्वा २३४ या ॥ मघवन् वृ । त्रहत्याया त्रहत्यायाः ३ : त्राहत्या २३४ या । तत्पृथिवीम् । अप्रायथाः । अप्रायथा ३ः । अप्राया २३४ या ॥ तदस्त्वभ्नाः । उद्दोदिवाम् । उतोदिवा ३ म् । अतोदा २३४ इवाम् । हा उहोवा । (त्रिः) । परात्पर-मैरय । ता । (द्वेत्रिः) । परात्परमीरय । त । ओ हो वाहा ० । वा ॥ ए । ते जोधर्मः संक्रीडन्ते वायुगोपास्ते जस्वतीर्मरुदभिर्भुवनानि चक्रदुः ॥ ३ ॥ (अ०) ग्रामणीरसि ग्रामणीश्त्यायाभिषिक्तोऽभि मा सिंश्च वचंसा ॥ तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयि मे धेहि ॥ ४ ॥ एह्येहि मातस्सुकपालहस्ते जगल्लये शङ्करवल्लभे च । वृषाविरुद्धे ललिते सुरेशे गृहाण पूजां वरदे नमस्ते । कपालहस्तायैः कपालहस्तामाऽ ॥ ५ ॥

(२६) (ऋ०) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्वदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यमिः ॥ १ ॥ (य०) सुसन्दृशं त्वा वयं मधवन्वन्दिवोमहि । त्रूनं पूर्णबन्धुरस्तुतो यासि वशां अनु यो जान्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥ (सा०) अभाइमाहे ।

(त्रिः) । उष्णे धृतं मधवाना ३ मूर्ख्या १ याऽ॒२ म् । इन्द्रंजिरो बृहती-
रथ्या ३ तूष्णा १ ता २ ॥ वावृघानं पुरुहूते, तु ३ वार्ता १ इ भी २ः ॥
अमत्यं जरमाणं दि ३ वो इदा १ इवे २ । अभामादहे । (द्विः) । अभा
२३ इ । मा २ । हा २३४ । औहोवा । सर्पसुवा ३४५ः ॥ ३ ॥ (अ०)
बृहदप्रावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् । तस्मै स्वप्नाय
दधु राधि पत्यं त्रयश्चिशासः स्वदरानशानाः ॥ ४ ॥ एह्येहि रक्ताक्षि
सुचाहपे क्रोधेन दूरीकृतदानवेन्द्रे । यज्ञे समागच्छ सुमध्यमे त्वं गृहण
पूजां वरदे नमस्ते ॥ रक्ताक्षै० रक्ताक्षीमा० ॥ ५ ॥

(२७) (क्ष०) परा शुभा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो
मिमिक्षुः । न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ १ ॥
(य०) देवीरापोऽ अपान्नपादो ऊमिहंविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमः । तं
देवेभ्यो देवता दत्त शुक्रपेश्यो येषां भागस्थ स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) ए
२ । विदामधवन्विदाः ॥ गातुमनुशैँ, सिषः । दाइशा ३१ उवा २३ ।
ई ३४ डा ॥ ए २ । शक्षाशक्षीनाम्पताइ ॥ पूर्वीणाम्पूरु २ । बसा ३१
उवा २३ ॥ ई ३४ डा । आर्भिष्टुमभा २ ह । षिभिरा ३१ उवा २३ । ई
३४ डा । स्वर्वा॑, शूरः । हाउ १ उवा २३ ई ३४ डा । प्रा । चेतन-
प्रचेतया ॥ ईन्द्रा ॥ द्युम्नायना २ इषाद् । इडा ॥ ईन्द्रा ॥ द्युम्नायना २
इषाइ । अथा ॥ ईन्द्रा ॥ द्युम्नायना २ इषाइ । इडा । एवाहिशक्तो राये
वा जायना १ जो ३ वाः । शविष्टवज्जिन्ना ३ । जासाइ ॥ मै॑, हिष्ट-
वज्जिन्ना ३२ हो ॥ जासा ३१ उवा २३ ॥ इट् इडा २३४५ ॥ आया ॥
हिष्टिवमा २ त्सुवा ॥ इडा २३४५ ॥ ए २ । विदाराये सुवीरियाम् । भुवो
वाजानाम्पतिर्वशा २॑ । अनुआ ३१ उवा २३ । ई ३४ डा ॥ ए २ । मै॑,
हिष्टवज्जिनुज्जसाइ । यः शविष्टः शुरा २ । ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥
योमै॑, हिष्टा मघो १ । ना ३१ उवा २३ । ई ३४ डा ॥ अै॑, शुर्नशोचा
२ इः । हा ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । चाइ । हित्वो अभिनोनया ॥
ईन्द्री ॥ विदेतमै॑२ स्तु हाइ ॥ इडा ॥ ईन्द्रो ॥ विदेतमै॑२ स्तुदा इ ।
आथा ॥ ईन्द्रो ॥ विदेतमै॑२ स्तुहाइ ॥ इडा । ईश्वेहि शक्रस्तमूर्तये वाह १

मा ३ हाइ । जेतारमपरा ३ । जाइताम् । सनः स्वर्षदता २३ होइ ॥
 द्वाइषा ३१ उवा २३ ॥ इट् इडा २३४५ ॥ क्रातूः छन्द ऋता २ खृहात्
 इडा २३४५ ॥ ए २ इन्द्रन्वनस्य सातयाइ ॥ हवामहे जेतारमपरा २ ।
 जितमा ३१ उवा २३ । ई २४ डा ॥ ए २ । सनः स्वर्षदहिद्विषा ॥ सानः
 स्वर्षदता २ इ । द्विष आ ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । पूर्वस्ययत आ २ ।
 द्विव आ ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । अ॑ शु र्म दाया २ । हाउ १ उवा
 २३ । ई ३४ डा । सू । मनगाधेहिनो व सा उ ॥ पत्तीः वशिष्ठशा
 २ स्यताइ । इडा पर्तीः । शविष्ठशा २ स्य ताइ । अथा ॥ पूर्तीः ॥ शवि-
 ष्ठशा २ स्यताइ । इडा । वशीहिशक्रा नूनन्तज्ञद्य॑ सा १ न्या २ साइ ।
 प्रभोजनस्यवा ३ ॥ त्राहान् ॥ समर्येषुब्रेवा २३ होइ ॥ वाहा ३१ उवा
 २३ ॥ इटा इडा २३४५ ॥ शुरो ॥ योगेषुगा २ च्छा ताइ । इडा ॥
 सात्वा सुशेवो २ छ्यूः ॥ इडा २३४५ ॥ ३ ॥ आइवा हियेवा २३४५ ।
 होइ । हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥ आइवा ॥ हियग्ना २३४५
 इ । होइ । हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥ आइवा ॥ हिपूषा
 २३४५ न । होइ ॥ हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई २४ डा ॥ आइवा ॥
 हि देवा २३४५ः । होइ ॥ हो । हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥
 (अ०) शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्वि सुभनस्यमानः ।
 तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्नासामेका वि पापातानु घोषम् ॥ ४ ॥
 एह्येहि मातक्षशुकि योगिनि त्वमस्मत्सवे ब्रह्ममहेशवन्द्ये । परात्परेण
 विहिताङ्गुरागे गृहाण पूजाँ वरदे नमस्ते ॥ शुष्कवयेऽ शुष्कीमाऽ ॥ ५ ॥

(२८) (ऋ०) रक्षोहणं वाजिनमा जिघमि मित्रं प्रथिष्ठसुप यामि
 समं । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिदधः स नो दिव स रिष पातु नक्तम्
 ॥ १ ॥ (य०) प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुएदस्यनुपदे त्वा सम्पदे त्वा
 तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ २ ॥ (सा०) तक्षद्यदी । हो २३४५ इ ॥ मनसो-
 वेनतः । वा २३४५ क ॥ ज्येष्ठस्यवा ३१२३४ । मन्द्युक्षोरनी ॥ का १३४५
 इ ॥ आदाइमाया ३१२३४ न । वरमावावशा । ना २३४५ः ॥ जुष्टम्पता
 ३१२३४ इम् । कलशेगा ५ वः । इ । दाउ ॥ वा ॥ ३ ॥ (अ०) रक्षोहणं

विष्णुयागादि यज्रों में चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा योगिनी का स्थापन १४५

वाजिनमा जिर्विमि मित्रं प्रतिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः
समदधः स नो दिवा स रिषः पातु नक्षम् ॥ ४ ॥ हेश्येनि मातर्दहं
दुखजातं यज्ञे समागत्य चतुर्भुजे नः । अनन्यभावाः कहणार्द्वचित्साः कल्याण-
काङ्क्षा भवतीं नमायः ॥ इयेश्यै० शेनीमा० ॥ ४ ॥

(२९) (श०) समुद्रज्येष्ठा सल्लिख्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनि-
विशमानाः । इन्द्रो यावज्जी वृषणो रशाद् ता आपो देवी रिह मामवन्तु
॥ १ ॥ (य०) द्वारा देवी देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्तेऽ अग्नेः । अरु
व्यचसो धामना पत्यमानाः ॥ २ ॥ (सा०) हाउहा उहाड । आयु-
श्चक्षुज्यर्योति । आ होवा । ईया । उदुत्तमं वस्त्रपाशमा ३३ स्मात् ।
अवाधमंविमध्यम् । शथा २३ या ॥ अथानित्यव्रतेवयंता २३ ॥ अनागसो
अदियेसिया २३ मा ३ । हाउहा उहाहा आयुश्चक्षुज्यर्योतिः ओ होवा ई
२ । या २३४ । औहोवा ॥ ई २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) आपो अमि विश्वमावत्
गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः । यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय
हविषा विधेम ॥ ४ ॥ ४ सादमाधाय कपोतकाख्ये देवि त्वमागच्छ
ममाध्वरेऽत्र । समस्तदेवा सुरवन्दरवनोये गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥
कपोतिकाये० कपोतिकामा० ॥ ५ ॥

(३०) (श०) पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिष्ण्यो वसुः सत् ।
उत त्रायस्व गृणतो मधोनो महश्च रायो रेवतस्कृधो नः ॥ १ ॥ (य०)
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोबहुव्यां पूष्णो हस्ताव्याम् । आददे
नारिरसि ॥ २ ॥ (सा०) एतसुस्यम् । ए ५ । मदा ॥ चक्षुताम् । सहस-
धारं वृषभं दिवोदू २३ हाम् ॥ वा इश्वा २ वासू २३ ॥ निषो २३४ वा ।
भ्रात् तो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अय०) सत्यं बृहददत्तमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयना
पृथिवी घोरयन्ति ॥ सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः
कृणोति ॥ ४ ॥ आवाहये माशकरां प्रकेतः प्रियां प्रतीच्यामुपलब्धवासाम् ।
जलाधिनाथां स्फटिकप्रभां त्वां गृहाण मेऽर्चा शिवमातनुष्व ॥
पाशहस्ताये० ॥ ५ ॥

(३१) (ऋ०) पृष्ठदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु
जग्मयः । अग्नि जिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह
॥ १ ॥ (य०) भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मध्यनिं दघिषे स्वर्षी जिह्वामन्ने चक्षुषे हव्यवाहम् ॥ २ ॥ (सा०)
प्रत्यग्ने । हरसाहरा ६ ए । शृणाहि वा २ इ । द्वता ३४०ः । पा ३४
री ॥ यातुधानस्य रक्षसो ३ ॥ वा २३ लाम् ॥ नियुबज्ज्वो ३३४ वा ॥ री
२३४ याम् ॥ ३ ॥ (अ०) य एवं विदुषेऽद्विवाथान्येभ्यो ददद्वशाम् । दुर्गा
तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सह देवता ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिह दण्डहस्ताँ
यमेपित्तामज्जनसन्निभां च । विशालवक्षःस्थलरुद्ररूपां गृहाण पूजां वरदे
नमस्ते ॥ दण्डहस्तायै० दण्डहस्तामा० ॥ ५ ॥

(३२) (ऋ०) महे नो थद्य बोधयोषो राये दिवित्मती । यथा
चिन्नो अबोधयः सत्वश्रवसि वाप्ये सुजाते अश्व सून्तृते ॥ १ ॥ (य०)
कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्रसि दाशुषे । उपोपेन्नु मधवन्भूयऽ इन्नु ते
दानन्देवस्य पृच्छतः आदित्येदभ्यस्त्वा ॥ २ ॥ (सा०) शचीभिर्ना०५:
शचीवसू ॥ दिवानक्तं दिशस्यताम् । मावः २ म् । रातिरुपदस्त्कदाचना ।
आस्मा २ त् । रातिः कदो २३४ वा । चा ५ नो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०)
शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा विभषि सुमनस्यमानः । तिस्रो वाचो
निहिता अन्तरस्मिन्नासामेका वि पपातानुघोषणम् ॥ ४ ॥ एह्येहि देवि
त्वमिह प्रचण्डे प्रचण्डनोर्दण्डसुरारिहस्ते । सुरासुरैरचितपादपद्ये विशाध्वरं
नो वरदे नतस्ते ॥ प्रचण्डायै० प्रचण्डामा० ॥ ५ ॥

(३३) (ऋ०) मा नस्तोके तनये मा न आयो मा नो गोपु मा नो
अश्वेषु रीरिष । वीरान् मा नो रद्र भामितो वधीर्हविभमन्तः सद्मित् त्वा
हवामहे ॥ १ ॥ (य०) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरेरङ्गस्तुष्टुवाष्टुस्तनूभव्यंशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ (सा०)
हा ३ (३) । वाऽधहहहह । (त्रिः) । ऐहि २ । (त्रिः) । ऐहिहा ३ वाक् ।
(त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । प्रजातोकमजीकनेहस् ।
इहा ३४५ । हा उ (३) । वाऽधहहहह । (त्रिः) । ऐहि २ । (त्रिः) ।

एहिहा उवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) आयाउ । (त्रिः) ।
 आग्नरस्मिन्नमना ॐ ३ हो । हा २ इया । ॐ ३ हो । हा २ इया । ॐ
 ३ हो ३ ॥ । हाउ ३ । वार्घहहहह । (त्रिः) । ऐहिहा उवाक् । (त्रिः)
 हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । इहप्रजायमिहरयं ररणो हस ।
 इहा २३४५ । हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) ऐही २ । (त्रिः)
 ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) आयाउ । (त्रिः) । जात-
 वेदाओं ३ हो । हा २ हया । ॐ ३ हो । हा २ हया । ॐ ३ हो ३ । हाउ
 (३) वार्घहहहह । (त्रिः) ऐही २ । ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हा हाउ ।
 (त्रिः) । हाउ (३) वा । रायस्पोषायसुकृतायभूयसेहस । इहा २३४५ ।
 हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) । एही २ । (त्रिः) ऐहिहा उवाक् ।
 (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । आयाउ । (त्रिः) । घृतं मे चक्षुरमतं म
 आसानी ३ हो । हा २ इया । ॐ ३ हो । हा २ इया । ॐ ३ हो ३ । हाउ
 (३) वार्घहहहह । (त्रिः) । ऐही २ । (त्रिः) । ऐहिहा उवाक् ।
 (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । आगः वाममिदं बृहद्दस् ।
 इहा २३४५ । हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) । ऐही २ । (त्रिः)
 ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । आहाउ । (त्रिः) । त्रि-
 धातुरकोरकसोविमाना ॐ ३ हो । २ इया । ॐ ३ हो । हा २ इया । ॐ
 ३ हो ३ ॥ । हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) ऐही ३ । (त्रिः) ।
 ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । इदं वाम-
 हिदं बृहद्दस् । इहा २३४५ । हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) । ऐही
 ३ । (त्रिः) ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । आयाउ । (त्रिः) अजस्तं ज्योता
 हरी ३ हो । हा । हा २ इया । ॐ ३ हो । हा २ इया । ॐ ३ हो ३ ॥
 हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) ऐही २ । (त्रिः) ऐहिहा उवाक् ।
 (त्रिः) हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । चराचराय बृहत इदं धाम-
 मिदं बृहद्दस् । इहा २३४५ । हाउ (३) । वार्घहहहह । (त्रिः) ऐही
 ५ । (त्रिः) ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) आयाउ । त्रि ।
 हविरस्मिसवर्मी ३ हो । हा २ इया ३ ३ हो । हा २ इया । ॐ ३ हो २ ।

हाउ (३) । वाग्घहहहह (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा ॥ एयशोक्रान्भूतमततनतप्रजाउसमचूकुपत्प-
शुभ्योहस् । इहा २३४५ ॥३॥ (अ०) मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा नो वहन्तमुत मा ना वक्ष्यतः । मा नोः हिसोः पितरं मातरं च स्वाँ
तन्वऽ रुद्र मा रीरिषो नः ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिह चण्डविक्रमाकज्ञान-
तामित्तनिराकरीं च । संसारपञ्चेऽत्र निमज्जनानानुद्वारयन्तीं भवतीं
नमामि ॥ चण्डविक्रमायै० चण्डविक्रमा० ॥ ५ ॥

(३४) (क्र०) अरिनमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं
रत्नधातमम् ॥ १ ॥ (य०) इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्य देवोऽवः सविता
प्रापयन्तु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमध्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरन-
मीवाऽ अयक्षमा मा वस्तेन ईशत माघवार्ठ० सो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतो
स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२॥ (सा०) अग्न आयाहि । वा ५
इतथा इ । गुणानो हृव्यदा १ ता ३ ये । निहोता २३४ सा । त्सा २३४
इषो ६ हा इ ॥ ३ ॥ (अ०) शं नो देवीरभिष्ठय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योराभ स्वन्तु नः ॥ ४ ॥ शिशुच्छिन देवि त्वमिहाद्य धत्स्व रति मयि
त्वच्चरणाऽग्रभाज । शशूनवास्मत्कुलजान्सवन्धून् गृहाण पूजां वरदे
नमस्ते । शिशुच्छयै० शिशुच्छनीमा० ॥ ५ ॥

(३५) (क्र०) द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठतु । नेष्टा-
द्युभिरिष्यत ॥ १ ॥ (य०) देवी द्यावा पृथिवी मखस्य वामद्य शिरो
राष्ट्रास देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्णे ॥ २ ॥
(सा०) अयन्त आ ॥ द्रसोमो । होवा ३ होइ । निपूतो आ ३ । धीबहा
२३४ इषी ॥ आइहीमस्या २३ ॥ द्वा २ वा २३४ अ होवा ॥ पी २३४
वा ॥ ३ ॥ (अ०) अहं रुद्रेभिवसुभिष्वचराम्यहमादित्यरुत विश्वदेवैः । अहं
भित्रावरुणोभा विभर्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनो भा ॥ ४ ॥ आवाहये
त्वामिहपापहन्त्रीं कन्यापचित्या सुमुखीं प्रसन्नाम् । मुक्तिप्रदां भक्तजने-
ष्टदात्रीं गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ पापहन्त्र्यै० पापहन्त्रीमा० ॥ ५ ॥

(३६) (क्र०) असुनीते मनो अस्मासुधारय जीवातवे सु प्र तिरा

न आयुः रारन्धि नः सूर्यस्य संहणि धृतेन तन्वं वर्धयस्व ॥ १ ॥ (य०)
 विश्वानि देव सवितदुरितानिषरासुव । यदमद्रं तन्न आसुव ॥ २ ॥
 (सा.) असाविस्वामा अरुषो वृषाह । राइः ॥ राजेवदस्मो अभिगा
 अचिक्र । दात् । पुनानो वारमत्येष्यव्य । याम् ॥ इयेनो नयो निघृत ।
 चा तमा ३ । सारदा २३४ अँ हो वा ॥ ए ३ । दिवी २३४५ ॥ ३ ॥
 (अ.) आनो यहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतिरूप पिबा सुशिप्रिन्नन्वसः ॥४॥
 एह्येहि कालित्वमिहाध्वरे मे वेदज्ञसम्पादितकार्यजाते । विष्णुप्रिये सर्वनुते
 शृहाण पूजां यथावत्कृपया सुरेशि ॥ काल्य० कालीमा० ॥ ५ ॥

(३७) (ऋ०) रपदुगन्वन्वीरप्याह च योपणा नदस्य नादे परि
 पातु मे मनः । इष्टस्य मध्ये अदितिनि धातु नो भ्रान्तो ज्येष्ठः प्रथमो
 वि वो चति ॥ १ ॥ (य०) असुन्वन्तम यजमानमिच्छस्ते नस्ये
 त्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमा देवि निर्वृते
 तुव्यमस्तु ॥ २ ॥ (सा० वे त्याहिनिर्वृतीनाम् । वाच्चहस्तपरिवृ ।
 जाम् ॥ अहर । हाः । षुन्ध्युः परि । पदा ३ मा ५ इवा ६४६ ॥ ३ ॥
 (अ०) वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिदभरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं
 हवामहे ॥ ४ ॥ आवाहये त्वां रुघ्वरं पिबन्तीं देवासुराणां भयदां ज्वल-
 न्तीम् । विशालनेत्रा परिपूर्णचन्द्रविम्बाननां चन्दनचचिताङ्गीम् ॥
 रुधिरपायिन्य० रुधिरपायिन्य० रुधिरपायिनीमा० ॥ ५ ॥

(३८) (ऋ०) सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानाम-
 भवत्पुरोगा । अस्य होतुः प्रदिस्पृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवा ॥
 ॥ १ ॥ (य०) अग्निश्च मे वर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमे-
 धश्च मे वृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च द्योश्च मेऽङ्गलयः शकरयो दिशश्च
 मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥ (सा०) अग्निस्तमेन शोचिषा । इह । य
 ऽसद्विश्च न्यत्रिणां २ म् । इहा ॥ अग्निर्नोर्व॑ सता ३ इ । इहा ३ ॥
 रा २३४ यो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) स्वाहाकृतः षुचिर्देवेषु यज्ञा यो
 अश्विनोश्चमसो देवयानः । तमु । विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धवर्षस्य
 ब्रत्यासना रिहन्ति ॥ ४ ॥ वसाधयां त्वामिह भावयेऽहं सामन्त यज्ञ

प्रसया समानाम् । यज्ञे: स्तुतां यज्ञवसाधयां च पाहि त्वमस्वे भवतीं
नमामि ॥ वसा धयायै० वसाधयामा० ॥ ४ ॥

(३९) (ऋ०) कस्य तूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य
नाम । को नो महया अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेद्यं मातरं च ॥ १ ॥
(य.) वह्नीनां पिता वहूरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समनावगत्य । इषुधिः
लंकाः पृथुनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनदधो जयति प्रभूतः ॥ २ ॥ (सा.) चित्रा
६ ए ॥ ए ३१२३४ । शिशोस्तरुणस्य वक्षयः । क्षयः । हिहिहियोऽद्य हा
उ । ए ३१२३४ । नयो मातरावन्वेति घातवे । तवे । हिहिहिया ६ हा
उ ॥ ए ३१२३६ । अनुवायदजीजनःधाचिदा । हिहिहिया ६ हा उ ।
ए १२३४ । ववक्षत्सद्यो महिदूतियंचरन् । हिहिहिया ६ हा उ । वा ॥ ए
३ । ऋतून् ॥ ३ ॥ (अ.) सनोबालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदड्ढिनः ॥ ४ ॥ आवाहये त्वाभिह
गर्भभक्षां देवीं सुमायां भयदां समन्तात् । स्ववंशरक्षार्थभिहार्चयामि
गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते ॥ गर्भभक्षायै० गर्भभक्षामा० ॥ ५ ॥

(४०) (ऋ०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्थापस्याः । सूक्तं संशाय पविमिन्द्र तिर्गं वि शत्रुन् तालिह विमुघो तुदस्व
॥ १ ॥ (य०) नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउदोतऽइषवे नमः । बाहुध्यामुत ते
नमः ॥ २ ॥ (सा.) मृज्यमाना ॥ सुहस्तिया ३ । सामू ३ द्राइवा ।
चमिन्वसा ३ इ । रायो ३९ पाइशा । गवहुला ३ म । पूरु २ स्पृ २३४
हाम् । पवका । ना । औ ३ हो । भियो २३४ वा । षा ५ सो ६ हाइ ॥ ३ ॥
(अ.) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्थात्परस्याः ।
सूक्तं संशाय पविभिन्द्र तिर्गं वि शत्रन्तार्द्ध वि मृघो तुदस्व ॥ ४ ॥
आवाहयेहं शवहस्तकां त्वां सर्वस्य लोकस्य भयप्रदात्रीम् । कपालखट्टा-
झधरां सुधूमां भजामि देवीं कुलवृद्धहेतो ॥ शवहस्तायै०
शवहस्तामा० ॥ ५ ॥

(४१) (ऋ०) सत्या सत्येभिर्महती महाभिर्देवी देवेभिर्यजता

यजत्रैः । रुजत् वृल्हानि दददुसियाणां प्रति गाव उषसं वाटशन्त ॥ १ ॥
 (य०) ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्षमं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे
 दीर्घायुत्वं च मेऽमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे
 सुदिनं च मे यज्ञेन कलपन्ताम् ॥ (सा० हाउ ३) आहा । (त्रिः)
 हा ओवा । (त्रिः) । ऊ २ । (त्रिः) ओ २ । (त्रिः) हा वाक् ।
 (त्रिः) । आयुर्यन् । (त्रिः) ए आयुः । (त्रिः) । आयुः । (त्रिः) ।
 वयाः । (त्रिः) । वयः । इन्द्रन्नरोनेमधिताहवा न्नाइ ॥ यत्पार्यायुनजते
 धिया २ स्ता ॥ शूरोनुषाताश्वसश्चका २ माइ । आगोमतिव्रजेभजातुवा
 २ चः । हाउ ३ । अनेहा । (त्रिः) । हा ओवा । (त्रिः) । ऊ २ ।
 (त्रिः) । ओ १ । (त्रिः) हाउवाक् । (त्रिः) आयुर्यन् । (त्रिः) ।
 ए आयुः । त्रिः । आयुः । (त्रिः) वयाः । (द्विः) । वा २ । या २२४ ।
 औ हावा ॥ ए आयुर्दी अस्मभ्यं वर्चोधादेवेभ्या २३४५ः ॥ ३ ॥ (अ०)
 सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम् । शर्वाः समह्याषवीरितो नः
 पारयादिति ॥ ४ ॥ आवाहये यज्ञ इहान्त्रमालीं पाञ्चकत्रीं सुरसानुरूपाम् ।
 गृहण पूजां श्रुतिमन्त्रजुटां कृपाकटाक्षं कुरु मय्यवीने ॥ आन्त्रमालन्यै
 आमालनीमा ॥ ५ ॥

(४२) (ऋ०) द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृणिरे । देवेषु
 ता वनामहे ॥ १ ॥ (य०) ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं
 विभृतामुपस्थे । अप शत्र्वन्विधयताद्युं संविदानेऽआत्मीऽ इमे विष्णुरन्तीऽ
 अमित्रान् ॥ २ ॥ (सा०) देवो ३ वो ६ द्रविणोदाः ॥ पूर्णि विवश्वा-
 सिचम् । उद्वा १ सित्र्व २ । ध्वमुपवा पृणध्वम् । आदि द्वोदे २ । व
 ओहते । इडा २३ भा ३४ । ओ २ ४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ०) अहं
 राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकीतुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । तां मा देवा व्यदधुः
 पुरुत्रा भूरिस्यात्रां भूर्यविशयस्तः ॥ ५ ॥ आवाहये त्वामिह स्थूलकेशीं
 शिरोरुहाच्छादितसर्वदहाम् । स्काम्बरी नक्तचरीं सुवक्त्रां ध्यायेऽध्वरे-
 स्मिन्मनसाच वाचा ॥ स्थूलकेशैः० स्थूलकेशीमा ॥ ५ ॥

(४३) (ऋ०) ईले द्यावा पृथिवी पूर्वचित्त येऽग्निं धर्मं मुरचं

यामन्निष्ठये । याभिर्भरे कारमशाय जिन्दय स्नाभिरूषु ऊतिभिराश्वना
गतम् ॥ १ ॥ (य०) वेद्या वेदिः समाप्यते बहिषा बहिरन्द्रियम् । यूपेन
यूपः आप्यते प्रणीतो अग्निरर्गिना ॥ २ ॥ (सा०) भूमिः । (त्रि०) ।
अन्तरिक्षम् । (त्रिः) द्यौः । (द्वि०) । द्या २४ । औ हो वा ॥ ए ३ ।
भूताया २३ ४५ ॥ ३ ॥ (अ०) भूतिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्त-
रिक्षमभिशब्द्या नः द्यौर्न पिता पित्र्याच्छं भवाति जामि मृत्वा माव पत्सि
लोकात् ॥ ४ ॥ महोदरे त्वामिह भावयामि कुक्षि बृहःतं दधतीं सुवेषम् ।
यज्ञे समागच्छ विधेहि भद्रं गृहाण पूजां प्रियदे नमस्ते ॥ बृहत्कृक्षये०
बृहत्कृक्षीमा० ॥ ५ ॥

(४४) (ऋ०) अश्वदायि गोदायि घनदायि महाघने । घनं मे
जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १ ॥ (य०) पावकानः सरस्वती
वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु षिया वसुः ॥ २ ॥ (सा०) अतीहिमा ॥
न्युषा २ वा इ णा २ म् । सुषुवाँ सा २ म् । होइ । ऊपे १ राया २ ॥
अस्यराता २३ उ ॥ सूर ता २३८ औ होवा ॥ पी २३४ वा ॥ ३ ॥ (अ०)
कालोऽमूँ दिवमजनयत्काल इमाः पृथिवीरुत । कालेह भूतं भवयं चेषितं
हवितिव्रते ॥ ४ ॥ एह्येहि सपस्य इह द्विजित्वे द्विजह्वतादोषमघार-
यन्तीम् । शिवप्रिये जन्मुत्ताप्रिये च नमामि त्वां देवि बहुप्रकोपाम् ॥
सपस्याय० सपस्यामा० ॥ ५ ॥

(४५) (ऋ०) तवाहं सोम शरण सरूप इन्द्रो दिवे दिवे । पुरुणि
बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥ १ ॥ (य०) अस्कत्रमस्त्र
देवेभ्यः आज्यर्थं संभ्रियासमड्ग्रिणा विष्णो मा त्वावकमिष वसुमीमग्ने
ते च्छायामुपस्थेषं विष्णोः स्थानमसीतः इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्धर्वोऽधर्ड
आस्थात् ॥ २ ॥ (सा०) तवाहै सो । मरा २ रणा । रण । सरूप इन्द्रो
दिवा २ इदिवाह । दिवं । पुरुणिवभ्रो निचरन्ति भा २ मवा । अव ॥
परिधीं रतितं इहा २३ इ । आ २ ड । हा २३४ । औ हो वा । औ हो
वा ॥ ऊ २३४ पा ॥ ३ ॥ (अ०) सोम राजन्संज्ञानमा वपेभ्यः सुद्राह्यणा
यतमे त्वोपसोदात् । क्रृषीनार्योऽस्तपसीऽधि जातान् ब्रह्मोदने सुहवा

जीहवीमि ॥ ४ ॥ आवाहये प्रेतवहां यमप्रियां यमस्य दूतौं सुविशाल-
रूपाम् । सुदण्डहस्तां महिषाधिरूढां भजामि देवीं कुलवृद्धिहेतोः ॥ प्रेत-
वाहिन्यै० प्रेतवाहिनीमाऽ ॥ ५ ॥

(४६) (ऋ०) ते आचरन्ती सभनेव योषा मातेव पुत्रं विभृता
मुपस्थे । अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आत्नी इमे विस्फुरन्ती अमित्रान्
॥ १ ॥ (य०) ते आचरन्ती सभनेव योषा मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यताऽ॑ संविदानेऽ आत्नी॑ इमे विस्फुरन्ती॑ अमित्रान् ॥ २ ॥
(सा०) अपामिवे दूर्मयस्तौ । होवाहाइ ॥ तुराणा २३४ । हाहोइ ।
प्रमनी । षाः । ईरते इ । सोमम् । छा ३४ । हाहोई । नमस्य । ताइ ।
उपचा ३ । यन्तितसम् । चा ३४ । हा होइ ॥ आच वि । शा । तिषुश ।
तीषुश । ता ३४ म् । हाहा ३४ । और होवा । वा ३ डा २३४५ः ॥ ३ ॥
(अ०) अपो देवीर्मधुमतघृतरचुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिङ्ग्रामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वर्यं स्याम पतयो
रयोणाम् ॥ ४ ॥ आवाहये शूककरां सुभीमां कामप्रियां घोरमुखीं
कृशाङ्गीम् । यज्ञे समागत्य शुभं कुरुष्व गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते ॥
दन्तशूककरायै० दन्तशूककरामाऽ ॥ ५ ॥

(४७) (ऋ०) बलिस्था पर्वतानां खिद्रं विभिषि पृथिवि । प्रया
भूमि प्रवत्वति मह्ता जिन्नोषि महिनि ॥ १ ॥ (य०) मही द्यौः पृथवो
च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपूनां नो भरीमभिः ॥ २ ॥ (सा०)
यज्ञायज्ञा ॥ वो अग्नयाः इ । गिरा २ गिरा ३४ । हा हो इ । चादक्षा
२३४ साइ । प्रभा २ वयममृत जा । ता । वे १ दासा २ म् ॥ प्रिय-
मित्राम् । नश्॒ सिषाम् ॥ एर्हया । ओ ही हो २३४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥
(अ०) यामृषयो भूतकृतो मेधां म धाविनो विदुः । तया मामद्य मेध-
याग्ने मेधाविनं कुरु ॥ ६ ॥ आवाहये दैत्यसुतां सुभीमां क्रोञ्चीं मह हर्षसन-
सनिविष्टाम् । भयस्य इन्त्रीं द्विजसङ्घजुष्टां वने वसन्ती वनदेवतां त्वाम् ॥
क्रोञ्चयै० क्रोञ्चीमाऽ ॥ ५ ॥

(४८) (ऋ०) देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरम्धया । भगस्य रातिमीमहे ॥ १ ॥ (य०) उपयामृगृहीतोऽसि साबिन्नोऽसि च नो मयि धेर्ह । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपति भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ २ ॥ (सा०) तत्सवितुवरेणियोम् । भर्गो देवस्य धीमा हीऽ २ । वियो यो नः प्रबो १२१२ । हुम् आ २ दायो आ २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) सविता प्रस वाना-मधिष्ठिः स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्नर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकृत्यामस्यामा शिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं मृगशीष्टनाम्नो निजब्रवोथामुद्गमस्थाम् । चन्द्र-प्रियां चन्द्रनिभानतां च संभावयास्मानिह योगिनि त्वम् ॥ मृगशीष्यै० मृगशीष्मां ॥ ५ ॥

(४९) (ऋ०) एको बहुनामसि मन्यवौलितो विशं विशं युधये स विशाघि । अकृत्तरक त्वया युजा वयं द्युमन्तं धोषं विजयाय कृण्डमहे ॥ १ ॥ (य०) आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सञ्जये ॥ २ ॥ (सा०) अग्नाइमृडा २५ । महे० आ २३४ सी । अथ आदा २ इ । वयुञ्जी २३४ नाम् । इयेथ वा २३ । हिरा ३ सा ५ दा ६५६ म् ॥ ३ ॥ (अ०) यदन्तरिक्ष पृथिवीमृत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहसिम । अयं तस्मादुगार्हपत्यो ना अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोऽम् ॥ ४ ॥ वृषानने शङ्करवल्लभे त्वममत्रेहि यज्ञे विवि गोरवाय । त्वमचये दैव कृपां विधेहि गृहाण पूजां वरदे नमस्ते । वृषाननायै० वृषाननामा० ॥ ५ ॥

(५०) (ऋ०) अर्यमणं बृहस्पतिमन्द्र दानाय चोदय । वा तं विश्वं सरस्वतीं सादतारं च वाजिनम् ॥ १ ॥ (य०) काषिरसि समुद्रस्य त्वाक्षत्याऽ उन्नयाम । समापोऽ अद्भिरम्मत समाषष्टीभिरोषवीः ॥ २ ॥ (सा०) अग्नाइमृडा ५ । महे० आ २३४ सी । अय आदा २ ३ । बयुञ्जा २३४ नाम् । इयेथ वा २३ । हिरा ३ सा ५ दा ६५६ म् ॥ ३ ॥ (अ०) धनुविमषि हरितं हिष्ययं सहस्रांश्च शतवर्षं शिखण्डिनम् । रुद्रस्थे षुश्ररति देवहेतिस्तस्यै नमोयतमस्यां दिशी ३ तः ॥ ४ ॥ एष्वहि

व्यात्तास्य इहेव सद्यो मदीययज्ञे रुचिराङ्गुजाते । सुमूर्धंजे पद्मसमाननेत्रे
ममाध्वरं योगिनि पाहि नित्यम् ॥ व्यात्तास्यास्यै० व्यात्तास्यामा० ॥५॥

(५१) (क्र०) आ नो दिव आ पृथिव्या कृजीषिन्निदं बहिः
सोमपेयाय याहि । वहन्तु त्वा हरयो मद्यश्वाङ्गूषमच्छा त वस मदाया
॥ १ ॥ (य०) ऋग्मन्त्रं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनात्मृत्यो मुक्षीय माऽमृतात् । ऋग्मन्त्रं यजामहे सुगन्धि पत्रिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामृतः ॥ २ ॥ (स०) परीतोषिक्षता
सुताम् ॥ सोमोय उ । तम् हवाइः दावाओ २४ वा ऊ ३४ पा ।
न्वा० योनर्यो अप्तुवन्ता इ रा ॥ सुषावाऽ २३ सो ॥ मामद्रिभिः । इडा
२४ भा ३४३ । औ २३४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ० उत्तमो अस्योषधीना०
तव वक्षा उपस्तयः उपस्तिरस्तु सो ३ स्माकं या अस्मां अभिदासति ॥४॥
एहयेहि यज्ञे मम देवि धूमनिश्चसके योगिनि चारुदन्ते । गोरोचना०
कुङ्कुमशोभिताङ्गे प्रसोद मातः कमलालये त्वम् ॥ धूमनिश्चासायै०
धूमनिश्चासामा० ॥ ५ ॥

(५२) (क्र०) पद्मानने पद्मविपच्यत्रे पद्मविष्ये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वनिये विष्णु भनोऽनुकूले त्वत्पादपद्म मयि संनिधत्स्व ॥ १ ॥ (य०)
श्रीश्व पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राण रूपमञ्चिनो व्यात्तम् । इष्णनिषाणाम्
म इषाण सर्वलोकं भ॒ इषाण ॥ २ ॥ (स०) हा । वो ३ हा । वो ३
हा ३ । हा । औ २३४ वा । हा इ । पूमाना २ ४ः सो । भाधा राप २३४ ॥
आपो वा २०४ सा अर्धा॑ २२४ सो ॥ आरत्ना २३४ धाः । योनी मा॒ २२४
त्ता॑ । स्यासीदा॒ २३४ सी ॥ ऊत्सोदा॒ २३४ इ वो । हा इ॑ रण्या॒ २३४
थाः । हा । वो॑ इ॑ हा । वो॑ ३॑ हा॑ ३॑ हा । औ॑ २३४ वा । हा॑ ३४ । औ॑
हो॑ वा ॥ ए॑ ३ । अति विश्वानि दुरिता॑ तरमा॑ २३४५ ॥ ६ ॥ (अ०)
देवी॑ देव्यामधि जाता॑ पृथिव्यामस्याष्वे । तां॑ त्वा॑ नितत्ति॑ केशभ्यो॑
हृणाय॑ खनामसि॑ ॥ ४ ॥ व्योमैकपादा॑ धृवद्वशं॑ सुरशोमावाहये॑ योगनि॑
दिव्यदेहाम् । प्रसोद मातः॑ कक्कलायताक्षि॑ वशाध्वरं॑ नो॑ वरद॑ नमस्ते॑ ॥
व्योमैकवरणो॑ धृवद्वशे॑ व्योमैकवरणाधृवद्वशमा० ॥ ५ ॥

(५३) (ऋ०) आश्रिपेणो होत्रमृषिनिषीदत् । देवापिर्देवसुमर्ति
चिकित्वान् ॥ १ ॥ (य०) विष्णो रराटमसि विष्णोः इनप्त्रे स्थो विष्णोः
स्यूरसि विष्णोध्वोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २ ॥ (सा० औं हो
इत्वमिन्द्र प्रस्तूतिषु ३२ ॥ अमाइवा इश्वाः । आसिस्था २३४ द्वर्द्धाः ॥
श्री ॥ आशस्तिहा जनितावृ । त्रू २३ रसाइ ॥ श्री ॥ तूवा २३० तुर्या ॥
तरी हो ३ । हुम्मा २ । स्था ४ तो ६४ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) उदगातां
भगवती विचती नाम तार के । विक्षेत्रियस्य मुद्रतामधमं पाशमुत्तमम्
॥ ४ । आवाहये तापनि योगिनि त्वां यज्ञे द्विषत्तापकरीशुभाङ्गरीम् ।
सर्वार्थसम्पत्तिकरी प्रणाभ्यां विघ्नब्रजं नाशय नो नमस्तु ॥ तापिन्ये०
तापिनीमा० ॥ ५ ॥

(५४) ऋ०) त्वष्टा दुहित्रे वइन्पु कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युद्यमाना भहो जाया विवस्वतो ननाश ॥ १ ॥ (य०)
ज्ञात्यगमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयठं सुधात् दक्षिणम् ।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत् ॥ २ ॥ (सा०) हा उ (त्रिः)
इमाः । ज्ञमाः । प्रजा । (त्रिः) प्रजापते । हो इ (द्वि द्विः) ॥ प्रजापते ।
हा ३१३ । वा २ ॥ ए । हृदयम् । (द्वि द्विः) ए । हृदया ३१३ । वा २ ॥
प्रजारूप मजोजने ३ । इट् इडा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) प्रजापतिः सलिलादा
समुद्रादाप ईरयन्तु दधिमर्दयाति । प्रप्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽवर्ज्जे
तेन स्तनयित्वने हि ॥ ४ ॥ आवाहये शोषणि दृष्टिमस्मिन् यज्ञे समागत्य
कुरु प्रसादम् । रसाध्वरं पालय नोरिनीते गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥
शोषणीदृष्टये० शोषणीदृष्टिमा० ॥ ४ ॥

(५५ ऋ०) कस्य तून कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दर्ति पितरं च वृशेयं मातरं च ॥ १ ॥ (य०)
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो दब्बासोऽपरीतासः उद्भिदः ।
देवानो यथा सदमिद् वृषेऽ असन्नायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ २ ॥
(सा०) हा ३ (३) । वाग्वहहहह । (त्रिः) । एहि २ । ऐही २ । (त्रिः) ।
ऐहिहा ३ वाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा ।

प्रजातोकलजीजनेहस । इहा २३४५ । हा उ (३) । वाऽघहहहह ॥
 (त्रिः) । एही २ । (त्रिः) । ऐहहा उवाक् । (त्रिः) । हाहाउ (त्रिः) ।
 आयाउ । (त्रिः) । अभिरस्मजन्मना ओ ३ हो । हा २ इया । ओ ३ हो ।
 हा २ इया । ओ ३ हो ३ ॥ (हाउ ३) वाग्घहहहह ! (त्रिः) ।
 ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) हाहाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । इहप्रजाय-
 मिहरयि॑ रसाणे हस । इहा २३४५ । हाउ (३) । वाग्घहहहह । (त्रिः)
 एही २ । (त्रिः) ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हाहाउ । (त्रिः) आयाउ ।
 (त्रिः) । जातवेदागो ३ हो । हा २ हया । ओ ३ हा । हा २ हया । ओ
 ३ हो ३ । हाउ (३) । वाग्घहहहह । (त्रिः) ऐही ४ । (त्रिः) । ऐहहा
 उवाक् । (त्रिः) । हाहाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा । रायस्पोषाय-
 सुकृतायभूसेसा : इहा २३४५ । हाउ (३) । वाग्घहहहह । (त्रिः) ।
 एही २ । (त्रिः) । ऐहिहा उवाक् । (त्रिः) । हाहाउ । (त्रिः) ।
 आयाउ । (त्रिः) । धृतं भे क्षु मृतं म असानो ३ हो । हा २ इया ।
 ओ ३ हो । हा २ इया । ओ ३ हो ३ । हाउ (३) वाग्घहहहह । (त्रिः) ।
 ऐनी २ । (त्रिः) ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) हाहाउ । (त्रिः) । हाउ (३)
 वा । आगम्वाममिदं बृहद्दस् । इहा २४४५ । हाउ (३) । वाग्घहहहह ।
 (त्रिः) ऐही २ । (त्रिः) । ऐहह उवाक् । (त्रिः) । हाहाउ । (त्रिः) ।
 हाहाउ । (त्रिः) । विधातुरकोरजसोविमाना ओ ३ हो । हा २ इया ।
 ओ ३ हो । हा १ इया । ओ २ हो ३ ॥ हाउ (३) । वाग्घहहहह । (त्रिः)
 ऐही २ । (त्रिः) ऐही २ । (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) । हाहाउ ।
 (त्रिः) । हाउ (३) वा । इदं वाममिदं बृहद्दस् । इहा २३४५ । हाउ
 (३) । वाग्घहहहह । (त्रिः) । ऐही २ । (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् ।
 (त्रिः) । आया उ । (त्रिः) । अजेस्म ज्योता इरी ३ हो । हा हा २
 इया । ओ ३ हो । हा २ इया । ओ ३ हो ३ ॥ हाउ (३) । वाग्घहहहह ।
 (त्रिः) ऐही २ । (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) हाहाउ । (त्रिः) ।
 हाउ (३) वा । चराचराय बृहत इदं वाममिदं बृहद्दस् । इहा २३४६ ।
 हाउ (३) । वाग्घहहहह । (त्रिः) ऐही २ । (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् ।

(त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । आयाउ । (त्रिः) । हविरस्मिसर्वमी३ हो । हा २ इया । ओ३ हो । हा २ इया । ओ३ हो६ । हाउ (३) । चाप्तहहहह । (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा ॥ एयशोक्रान्भूतमततन्त्रजाउसमचूकुपत्पशुभ्योहस् ॥ इहा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽद्विवासो ऽअपरीतासऽ उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधेऽ असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ ३ ॥ आवाहये कोटरि योगिनि त्वां यज्ञेऽत्र देवाचितपादपद्मे । आगत्य रक्षां कुरु सप्ततन्तोर्गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ कोटर्यै० कोटरीमा० ॥ ५ ॥

(५६) (ऋ०) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेद सिंधुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ (य०) एका च मे तिस्तश्च मे तिस्तश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म एकविठं शतिश्च म एकविठं शतिश्च मे त्रयोविठं शतिश्च मे त्रयोविठं शतिश्च मे पञ्चविठं शतिश्च मे पञ्चविठं शतिश्च मे सप्तविठं शतिश्च मे सप्तविठं शतिश्च मे नवविठं शतिश्च म एकत्रिठं शच्च म एकत्रिठं शतिश्च मे त्रयत्रिठं शतिश्च मे यज्ञेन क्रल्पन्ताम् ॥ २ ॥ (सा० , श्रायन्तइवसू४ रायाम् ॥ विश्वा २ इव दिन्द्रा २ । स्यभा २ क्षता । वासु निजातो जनिमा । नियोजा १ सा २ ॥ प्रतिभागन्न दो २ विकाः । प्रा २३ ती ॥ भागान्न ३ दा । हुम् । धिमा ३ः । ओ २३८ वा ॥ हे २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) श नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्ववन्तु नः ॥४॥ एह्येहि मातर्वरदानदक्षे विशाम्बरे दैत्यविनाशकार्णिण । त्वां स्थूलनासां विनता नमामः प्रसीद घन्ये प्रणतातिहन्त्रि ॥ स्थूलनासिकायै० स्थूलनासिकामा० ॥ ५ ॥

(५७) (ऋ०) ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिविर्विश्राणां महिषो मृगाणाम् । इयेनो गृद्वाणां स्ववित्तिवंतानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्

॥ १ ॥ (य०) ब्रह्माणि मे मतयः शठं सुतासः शुष्मद् इर्यति प्रभृतो मेऽ
अद्विः । आशासते प्रतियंन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ २ ॥ (सा०)
ब्रह्मा । ब्रा २३ ह्या । जग्नानं प्रथमं पुरास्तात् ॥ विसाह । वा २३ इसी ।
मतः सुरुचौ वेन आवः ॥ सदू । सा २३ दू । घिनया इपमा यस्य वा इष्टाः ॥
सताः सा २३ ताः । चयोनिमसतश्च वाइवा ३४३ः । ओ १३४५ इ । डा
॥ ३ ॥ (अ०) तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपा २ः । सलिला मातरिश्वा ।
बीहुहरास्तप उग्रं यथोमूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ४ ॥ आवाहये
भूषणभूषिताङ्गी विद्युत्प्रभां भासितदिव्यदेहाम् । विशाम्बरे देवि गृहाण
पूजां देवैर्नुते ते वरदे नमोऽस्तु ॥ विद्युत्प्रभायै० विद्युत्प्रभामाऽ ॥ ५ ॥

५८) (ऋ०) नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन् परिकीतो योनो
सीददन्त । अतः संगृभ्या विशां दमूना विवर्मणायन्त्रैरीयतेन्द्रन् ॥ ५ ॥
(य०) असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्राः अधि भूम्याम् । तेषार्थं सहस्र-
योजनेऽव घन्वानि तन्मसि ॥ २ ॥ (सा०) अग्नेयू ३ ऽङ्कश्चाहियेत्वा ।
अश्वासोदेवसाधा २३ः । अरं वा २३ हो । तियाशा २३ वा ३४३ः । ओ
२३४५ इ ॥ ३ ॥ (अ०) वरणो वरयाता अयं देवो वनस्पतिः । यक्षमो
यो अस्मिन्नविष्टत्वमु देवा अवीवरन् ॥ ४ ॥ नमाम आह्वादमयीं बलाढ्यां
बलाकिकास्यां वरदां शुचिस्मिताम् । प्रविश्य यागेऽन्न मनोरयान्न विधेहि
सत्यानखिलान् नमस्ते ॥ बलाकास्यायै० बलाकास्यामाऽ ॥ ५ ॥

(५९) हंशः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्होता वैदिषदतिथिर्दुरोषसत् ।
नृषद् वरस दृतमद् व्योमसद् जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ १ ॥
(य०) सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिव्रृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुवृहथन्तरे पक्षो ।
स्तोमः आत्मा छन्दाऽऽस्यज्ञानि यजूऽुषिनाम । साम ते तनुवर्मिदेव्यं
यज्ञा यज्ञयं पुच्छं धिष्ण्याः शकाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः
पत ॥ २ ॥ (सा०) अमाइमाहे । (त्रिः) । चर्षणीधृतं मैववाना ३
मूर्क्या १ याऽ २ म । इन्द्रं गिरो वृहतौरभ्या ३ नूषा १ ता ४ ॥ वा
वृधानं पुरुहूतं सु ३ वार्ता १ इ भी २ः ॥ अमत्यं जरमाऽुदि ३ वा
इदा १ ईवे २ । अभाइमाहे । (द्विः) । अभा २३३ । मा २ । हा २३४ ।

ओ हो वा ॥ सर्पसु वा २३४५ः ॥ ३ ॥ (अ०) गन्धवर्णप्रसः
सर्पन्देवान्पुण्यजनात् पितृन् दृष्टा न दृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूँ हनन्
॥ ४ ॥ माजर्जिरिके त्वामिह चिन्तयामि माजरिरूपे निखिला घहन्त्रीम् ।
संभावये योगिनि दिव्यरूपे गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ माजयौ
माजरीमाऽ ॥ ५ ॥

(६०) (ऋ०) दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा
विवाससि । अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥ १ ॥
(य०) या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्त-
मया गिरिशन्ताभिचा कशीहि ॥ २ ॥ (सा०) ओग्राइ । आयाही ३ वी
इ तोया २ इ । तोया २ इ । गुणानोइ । व्यदातोया २ इ । तोया २ इ ।
नाइ होताया २२ । त्सा २ यि । वा २३४ ओ हो वा । ही ४३४ षी ॥ ३ ॥
(अ०) मृगो न भीमः कुचक्षे गिरिष्ठाः परावत आ जगन्थात्परस्याः ।
सूक्ष्मसंशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ता द्विवि मृधो नुदस्व ॥ ४ ॥
आवाहयेहं कटपूतनां त्वां समस्तविघ्नोधविनाशदक्षाम् । वृन्दारकैर्वन्दित-
पादपद्मां नमामि देवी परमात्मिहन्त्रीम् ॥ कटपूतनामाऽ ॥ ५ ॥

(६१) (ऋ०) अदितिर्द्यौरिदितिरन्तरिक्षमदितिर्मता स पिता
स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातिमदितिर्जनित्वम्
॥ १ ॥ (य०) देवी द्यावा पृथिवी मखस्य वामद्य शरो राध्यासं
देवयजने पृथिव्याः । मरवाय त्वा मखस्य त्वा क्षीष्णे ॥ २ ॥ (सा०)
वृषा ह्रात् ॥ पा २३४ वा । स्वधारा २३४ या । मा २३४ या । मा २३४
रु । त्वा २३४ ता इ । चामत्सा २३४ रा ॥ वा इश्वादवा २३ ॥ ना २
बो १३४ ओ हो वा ॥ जा २३४ सा ॥ ३ ॥ (अ०) वृषेन्द्रस्य वृषादिवो
वृषा पृथिव्या अयम् । वृषा विश्वस्य भूततस्य त्वमेक वृषो भव ॥ ४ ॥
अट्टाट्हासामिह भीमरूपां राकाप्रभामान्त्रयुतां जबलन्तीम् । सर्वस्व
लाकस्य विषादहन्त्रीमावाहयेस्मन् विततेऽध्वरेऽहम् ॥ अट्टाट्हासायै
अट्टाट्हासामाऽ ॥ ५ ॥

(६२) (ऋ०) न वा उ सोमो वृजिनं हृनोति न क्षत्रियं मिथुया
धारयन्तम् । हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितो शयाते
॥ १ ॥ (य०) इदं विष्णुविद्वक्त्रमे त्रेधा निदघे पदम् । समृद्धमस्य पाठं
सुरे स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) हाउ (३) । ऊ२ वदः । (त्रिः) वदोवदः ।
(त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः) । यमोहाउ । (त्रिः) । पितरो
हाउ । (त्रिः) । भारुण्डोहाउ । (त्रिः) । इम् स्तोमाम् । अर्हते जा ।
तावेदसहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) । ऊ२ वदः । (त्रिः) ! वदो-
वदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुराणः । (त्रिः) । यमोहाउ । (त्रिः) ।
पितरोहाउ । (त्रिः) । भारुण्डोहाउ । (त्रिः) रथामिवा । संमाहेमा ।
मानोषयहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) । ऊ२ वदः । (त्रिः) ।
वदोवदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः) । यमोहाउ (त्रिः) ।
पितरोहाउ । (त्रिः) भारुण्डोहाउ । (त्रिः) । भद्राहिना । प्रमातिरा ।
स्यास् सदहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) ऊ२ वदः (त्रिः) वदो-
वदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः) । यमोहाउ । (त्रिः) ।
पितरोहाउ । (त्रिः) । भारुण्डोहाउ । (त्रिः) । अग्नाइसरुयाइ ।
माचाइधामा । वायन्तवहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) । ऊ२ वदः ।
(त्रिः) । वदोवदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः) । पितरो-
हाउ । (त्रिः) पितरोहाउ । भारुण्डोहाउ । (द्विः) । भारुण्डो ३ हाउ ।
वा ॥ ए । वदोवदोनृम्णानिपुराययमोवः पितरोभारुण्डः । ए । व । वदोवदो
नृम्णानिपुराययमोवः पितरोभारुण्डः । ए । व । वदोवदोनृम्णानिपुराय-
यमोव पितरोभारुण्डा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) अदितिर्मादित्यः प्रती-
च्यादिशः पातुवाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोक कृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्य ॥ ४ ॥ कामाक्षिसंसारमलापहन्त्रि
विद्युत्प्रभाचन्द्रनिभानने च । एहोहि यज्ञे सकलार्थदात्रि गृहाण पूजां वरदे
नमस्ते ॥ कामाक्षायै । कामाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(६३) (ऋ०) मानः समस्य दूढाय १ः परिद्वेषसो अहंति ऊर्मिनं
नावमा वधीत् ॥ १ ॥ (य०) वृष्णः ऊर्मिशसि राष्ट्रदाराष्ट्रं मे देहि

स्वाहा वृष्णः ऊर्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रमसुष्मै देहि वृषसेनोसि राष्ट्रदाराष्ट्रमे
देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदाराष्ट्रमसुष्मै देहि ॥ २ ॥ (सा०) अहा ।
वो ३ हा । वो ३ हा । सनादगनाइ । मृणसि । आतुधानान् । नत्वारक्षा ।
सी ३ पृत । नासुजिग्रूः ॥ अनुदहा । सहमू । रात्क्यादाः । अहा । वो ३
हा । वो ३ हा । माता इहेल्याः । मुक्षत । दा ३४३ इ । वी ३ या ३५६:
॥ ३ ॥ (अ०) अज्ञेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याऽयते । दद्रभ्यो
गन्धाय ते नमः ॥ ४ ॥ मृगाक्षिवालाक्निभामिह त्वामावाहये ज्ञानप्रयी
सुशीलाम् । ब्रह्मादिदेवार्चितपादयुग्मामागत्य यज्ञेऽत्र विधेहि भव्यम् ॥
मृगाक्षयै० मृगाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(६४) (ऋ०) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्य-
जत्राः । स्थिरेरज्ञेस्तुष्टुवां सस्ततूभिर्वर्यशेम देवहितं यदायुः ॥ १ ॥ (य०)
मायै दार्वाहारं प्रभायाऽ अग्नेयधं ब्रह्मस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वषिष्टाय
नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितार्ठं
सर्वेभ्यो लोकेभ्यः उप सेक्तारमवः कृत्ये वधायोपमन्थितारं मेधाय वासुः
पल्लूली प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ २ ॥ (सा०) वृषासोमा ॥ द्युमा २
आसा २ इ । द्युतादेषा ३ हा ३ इ । वार्ष न्ना २३४ ताः ॥ वृषाघर्मा ३ ॥
इ ३ या ॥ णा इदधिष्वे । इडा २३ भा ३४३ । ओ २३४२ इ । डा ॥ ३ ॥
(अ०) अभाशर्वौ मृदन्तं माभियातं भूतपती नमो वाम् । प्रति हिता-
मायतां मा विक्षाष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं
मृगलोचनां त्वामाकण्ठदीर्घनयनां मणिकुण्डलद्व्याम् । मन्दस्मितां मृग-
मर्दोज्वलमालदेहां विशाध्वरं नो वरदे नमस्ते ॥ मृगलोचनायै०
मृगलोचनामा० ॥ ५ ॥

॥ इति विष्णुयानादि यज्ञों के चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा योगिनों का

स्थापन समाप्तः ॥

महारुद्रादि यज्ञों में चतुर्वेदोक मंत्रों द्वारा वास्तु पूजन

शक्तीचन्द्रः यौरादयो लिङ्गोक्ता देवता, द्वते द्वर्ठ० हैत्यस्य
आद्धी अनुष्टुप्छन्दः आशीर्देवता द्वते द्वर्ठ० हैत्यस्य उष्णिक्षन्दः
आशीर्देवता नमस्ते हरसे इत्यस्य दध्यङ्गाश्वर्णऋषिः ब्रह्मीचन्द्रः
अग्निर्देवता, नमस्ते अस्तु यतो यतः इत्यनयोरनुष्टुप्छन्दः
आद्याविद्युत्सर्वनयित्तुर्भगवान् देवता, द्वितीयायाः महावीरो
देवता, सुमित्रियान् इत्यस्य दध्यङ्गाश्वर्णऋषिः प्राजापत्या
जगतीचन्द्रः आपोदेवता तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्गाश्वर्णऋषिः
अक्षरातीतपुर उष्णिक्षन्दः सूर्योदेवता शान्त्यर्थ होमे विनियोगः ।

ध्यानम्—

ॐ शुद्रस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं पञ्चवस्त्रकम् ।

गङ्गाधरं दशभुजं सर्वामणभूषितम् ॥ १ ॥

नीलग्रीवं शशङ्काङ्कं नागयज्ञोपवीतिनम् ।

व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च वरेण्यमभयप्रदम् ॥ २ ॥

कमण्डल्वक्षसूक्त्राभ्यामन्वितं शूलपाणिनम् ।

ज्वलन्तं पिङ्गलजटाजूटमुद्योतकारिणम् ॥ ३ ॥

अमृतेनाप्लुतं हृष्टमुमादेहार्धधारिणम् ।

दिव्यसिंहासनासीनं दिव्यमोगसमन्वितम् ॥ ४ ॥

दिग्देवतासमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।

नित्यं च शाश्वतं शुद्धं भ्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ ५ ॥

सर्वव्यापिनमीशानं रुद्रं वै विश्वरूपिणम् ।

एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यक् ततो यजनमारभेत् ॥ ६ ॥

विश्वन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः । मण्डपेऽन्नावतिष्ठन्तु
आयुर्बलकराः सदा ॥ इति मन्त्रावृत्या आग्नेयादितश्चतुरः शङ्खन्
संरोष्य—अभिभ्योप्यथ सर्वभ्यो ये चान्ये तात् समाश्रिताः । बलि तेभ्यः
प्रयच्छाभि पुण्यमोदनमुत्तमम् १ नैऋत्यां० २ वायव्याधिपतिश्चैव वायव्यां
ये० ३ ईशान्याविपतिश्चैव ईशान्यां ये च रा० ४ ।

ततः—सुवर्णशलाकया प्रागग्रा उदकसंस्था नवरेखाः कुर्यात्—लक्ष्म्यै
नमः १ यशोवत्यै० २ कान्तायै० ३ सुप्रियायै० ४ विमलायै० ५ शिवायै०
६ सुभगायै० ७ सुमत्यै० ८ इडायै० ९ तत उदगग्रा प्राकसंस्था नवरेखा
कार्याः—धान्यायै० १ प्राणायै० २ विशालायै० ३ स्थिरायै० ४ भद्रायै०
५ जयायै० ६ निशायै० ७ विरजायै० ९ ।

१—(क्र०) अभि त्वा देव सवितरीशानं वायणिम् । सदावन्
मागमीमहे ॥ १ ॥ (य०) तमीशानं जगतस्तस्युषस्पतिं घियज्ञिन्वमवसे
हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदध्वः स्वस्तये
॥ २ (सा०) अभि त्वा शूर नो तुमोऽदुरघाइव घेनवः । ईशानमस्य
जगतः स्वर्दशमीशानभिन्द्र तस्तुषः ॥ ३ ॥ (अ०) ईशाना वार्यणां
क्षयन्तीश्वर्षणात्मा॒म् । अपो याचामि भेषजम् ॥ ४ ॥ समाहूयन्तं शिखिनं
महोज्वलं मेषाधिरूढं सुरराज वन्दितम् । त्रिशूलहृस्तं वरदे महेशं भजामि
देवं स्वकुलाभिवृद्ध्ये ॥ शिखिने नमः शिखिनमावाह्यामि स्थाप-
यामि ॥ ५ ॥

२—(क्र०) पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीलहुवे । स नो यवस-
मिच्छतु ॥ १ ॥ (य०) शं नो वातः पवता॑ शशस्तपतु सूर्यः । शश-
कनिकददेवः पर्जन्योऽ अभिवष्टंतु ॥ २ ॥ (सा०) महाँ इन्द्रो य ओजसा

पर्जन्यो वृष्टिमां इव । स्योमैवंत्सस्य वावृषे ॥ ३ ॥ (अ०) विद्या शरस्य
पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् । विद्योष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवपंसम्
॥ ४ ॥ एह्येहि जीमूतसुधाप्रमृष्टे चराचरेः सेवितघर्ममूर्ते । पवित्रदेवेश
गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भवन्नमस्ते । पर्जन्याऽपर्जन्यमाऽ ॥ ५ ॥

३—(ऋ०) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमजम प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ १ ॥ (य०)
मर्मणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम् । उरीवै-
रीयो वहणस्ते कृणो तु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ २ ॥ (सा०)
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमजम प्रमृणन्तमोजसा । इमं सजाता
अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ३ ॥ (अ०) प्रबलीनो
महितः शयां हतोऽमित्रो न्युबुदेऽ । आभजिह्वा घूमशिखा जयन्तीयन्तु
सेनया ॥ ४ ॥ एह्येहि देवेश जयन्तसूनो शच्याः सदा सर्वंसुरैकसेव्य ।
पीठेऽत्र यज्ञेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भवन्नमस्ते । जयन्ताय०
जयन्तमाऽ ॥ ५ ॥

४—(ऋ०) रमध्वं वर्चसे सोभ्याय कृतावरीरूप मुहूर्तमेवः । प्र
सिन्धुमच्छा बृहतो मनीषाऽ वस्यु ह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ १ ॥ (य०)
आयाऽत्वन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरा । वावृधानस्त-
विषीयस्य पूर्वार्द्योर्नं क्षत्रमभिभूति पुष्पात् ॥ २ ॥ (सा०) इन्द्रं नरो
नैमधिता हवन्ते यत्पार्यापुनजते धियस्ताः । शूरो नृषाता श्रवसश्च काम
आगोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ३ ॥ (अ०) आ यात्वन्द्रः स्वपतिमंदाय
यो धर्मणा तू तु जानस्तुविष्वान् । प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण
महता वृष्ण्येन ॥ ४ ॥ एह्येहि वृत्रधनं गजाधिरूढ सहस्रनेत्र त्रिदशवराज ।
शत्रीपते शक्र सुरेश नित्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ कुलिशायुधाऽ
कुलिशायुधमाऽ ॥ ५ ॥

५—(ऋ०) त्यानु नु क्षत्रियां सव आदित्यान् याचिषा महे सुमृ-
डीका अभिष्टये ॥ १ ॥ (य०) बण्महाँ २ ॥ असि सूर्य बडादित्य महीं
२ ॥ असि । महस्ते सर्वो महिमा पनस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्वा देव

महां र॥५ असि ॥ २ ॥ (सा०) बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्ठम महा देव महाँ असि ॥ ३ ॥ (अ०) यथा
सूर्यों सुच्यते तमसस्परि रात्रि जहात्युषसश्च के तून् एवाहं सब दुर्भूतं कत्रं
कृत्वाकृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ४ ॥ (बण्महाँ आसि सूर्य बडा-
दित्य महाँ आस । महांस्ते महता महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥)
समाह्वयन्तं द्विभुजं दिनेशं सप्ताश्ववाहं द्युमर्ण प्रहेशम् । सिन्दूरवणे प्रति-
भावसंभवं भजामि सूर्य स्वकुलाभिवृद्धये ॥ सूर्याय० सूर्यमा० ॥ ५ ॥

६—(ऋ०) सत्येनोत्ताभता भूमिः सूर्योर्णोत्तमिता द्यौः । ऋतेना-
दित्यास्तिष्ठास्ति दिवि सोम अधि श्रितः ॥ १ ॥ (य०) व्रतेन दीक्षामां-
प्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्य-
माप्यते ॥ २ ॥ (सा०) सत्यमित्या वृषेदसि वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा हृग्र शृण्वये परावति वषो अवावितः श्रुतः ॥ ३ ॥ (अ०) को
अस्मिन् यज्ञमदघादेको देवाऽवृष पूरुषे । को अस्मिन् यज्ञमदघादेको
देवाऽधि पूरुषे । को अस्मिन्नत्सत्यं कोऽनुतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ ४ ॥
एह्याह सत्येश महामहेश दुष्टान्तकृत्स्वच्छसुधर्ममूर्ते । पीठेऽन देवेश गृहाण
पूजा भमाध्वरं पाहि भवन्नमस्ते ॥ सत्याय० सत्यमा० ॥ ५ ॥

७—(ऋ०) अभि त्वा देव सवितरीशावं वार्याणाम् । सदावत्
भागमीमहे ॥ १ ॥ (य०) आ त्वाहार्षमन्तरभूद्ध्रुवास्तष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सवा वाञ्छन्तु मा त्वाद्राष्ट्रमाध्वन्नशत् ॥ २ ॥ (सा०) यथा
गोरो अपाकृतं तृष्णन्तेत्यरिणम् । आप त्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि
किंपेषु चा पव ॥ ३ ॥ (अ०) आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व
कुर्खी वड्ढि शक्राधियेह्या नः । श्नुषी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्म-
त्मस्वेह महे रणाय ॥ ४ ॥ समाह्वयन्तं द्विभुजं भृशं हि नीलोत्पलाभास-
विशालनेत्रम् नीलाद्विवर्ण प्रातभावभासं भजामि देवं कुलवृद्ध हेतोः ॥
भृशाय० भृशमा० ॥ ५ ॥

८—(ऋ०) अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उपत्वा रातिः सुवृत्तस्य तिष्ठन्नि वत्सव हृदयं तप्यते मे ॥ १ ॥ (य०)

या वां कशा मधुमत्यश्चिना सूनृतावती । तया यज्ञ मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
 (सा०) अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूप तेजः पृभिव्यामधि यत्सब्भूव ।
 अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृणो अववस्य रेतः ॥ ३ ॥
 (अ०) रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पूर्थवी स्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रसाश्च । अन्त-
 रिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ ४ ॥ समाह्रयन्त गगन दिवोकसां तिवासभतं
 सुविनिमिलं च । आस्त्कहीनं स्त्रिरं पुराणं भजामि नाकं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥
 आकाशाय० आकाशमा० ॥ ५ ॥

९—(ऋ०) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरामहि । नियुत्वान्
 त्सोमपीतये । १ ॥ (य०) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरामहि ।
 नियुत्वान्सोमपीतये ॥ २ ॥ (सा०) वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु
 नो हृदे । प्र न आयूषि तारिषत् ॥ ३ ॥ (बा०) वाताज्जातो अन्तरिक्षा-
 द्विद्वृतो ज्योतिषस्परि । स हिरण्यजाः कश्चनः कृश नः पात्वंहसः ॥ ४ ॥
 धूम्राह्रयं गन्धवसुरम्यं मृगाघ्रहृढं विदशेकवन्द्यम् । सुपूजकानन्दकरं
 पुराणं भजामि वायुं स्वकुलाभिवृद्ध्ये । वायवे० वायुमा० ॥ ५ ॥

१०—(ऋ०) पूषणन्व॑ १ जाश्वनुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो
 जार उच्यते ॥ १ ॥ (य०) पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
 स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ २ ॥ (सा०) शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरुपे
 अहनो द्यौरिवासि । विश्वा हि माया अर्वास स्वघावन्मद्रा ते पूषन्निह
 रातिरस्तु ॥ ३ ॥ (अ०) अपन्यघुः पीरुयेयं वयं यमिन्द्राग्नी धाता
 सविता वृहस्पतिः । सोमो राजा वर्णो अश्विना यमः पूषास्मान्परि पातु
 मृत्योः ॥ ४ ॥ एह्येहि पूषन् सुविचारदक्ष हयाघ्रिरुढाखिलधममूर्ते ।
 पीठेऽत्र देवेष गृहाण पूजां शिवाय तः पाहि भवन्नमस्ते ॥ पूषण०
 पूषणमा० ॥ ५ ॥

११—(ऋ०) वि दद यदी सरमा रुणमद्रेमर्हि पायः पूर्व्यं सध्यकः ।
 अःनं नयेत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् । १ ॥ (य०)
 तत्सूर्यस्य वेवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोविततठं सञ्चभार । यदेद्युक्त
 हरितः सधस्तादाद्वात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ २ ॥ (सा०) अभि त्यं देवं

सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चाभि सत्यसव रत्नघामभि प्रियं मतिम् ।
ऊर्ध्वो यस्यामतिर्भा अदिद्युत्तस्वीमनि हिरण्यपाणिमिमीत सुक्रतुः कृपा
स्वः ॥ ३ ॥ (अ०) इमे जीवा वि मृतैराववृत्तभृदभद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्छो अगाम नृत्ये हंसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ ४ ॥ समाहृयन्तं
वितर्थं विशालं सुपूजकानन्दकरं वरेष्वम् । त्रिशूलहस्तं मकराधिरूढं
भजामि देव कमलायताक्षम् ॥ वितर्थमा० ॥ ५ ॥

१२—(ऋ०) गृभ्नामि ते सौमगत्वाय हस्तं भय पत्या जरदृष्टिर्थ-
यासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्महां त्वादुगर्हिपन्नाय देवाः ॥ १ ॥
(य०) अक्षममीमदन्त ह्यव प्रियाऽ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवा विप्रा
नविष्टया मती योजा निवन्द्रते हरी ॥ २ ॥ (सा.) अग्निमीडे पुरोहितं
यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नघातमम् ॥ ३ ॥ (अ०) यो अग्निः
कव्यात्प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्निरं जातवेदसन्नम् । तं हरामि पितृव्यज्ञाय
दूरं स धर्मभिन्नां परमे सधस्ये ॥ ४ ॥ एह्येहि लोकेश्वरदिव्यमूर्ते गृहक्षत
त्वं कनकाद्रिरूपम् । पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥
गृहक्षताय० गृहक्षतमा० ॥ ५ ॥

१३—(ऋ०) यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । धर्म ह
यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरड़कृतः ॥ १ ॥ (य०) यमाय त्वाङ्ग्निस्वते
पितृमते स्वाहा । स्वाहा वर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ॥ २ ॥ (सा०) नाके
सुवर्णमुप यत्पन्तं हृषा वेनन्तो अम्बवक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुजस्य दूतं
यमस्य योनो शकुनं भुरण्युम् ॥ ३ ॥ (अ०) यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य
प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपत् । यो लोकानां विघुतिर्नाभिरेषात्तेनोदने-
नानि तराणि मृत्युम् ॥ ४ ॥ एह्येहि दण्डायुध धर्मराज क्रालाङ्गनाभास-
विशालनेत्र । विशालवक्षःस्थलरौद्ररूपं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥
यमाय० यममा० ॥ ५ ॥

१४—(ऋ०) अप्सरसां गन्धवर्णां मृगाणां चरणे चरन् । केष्ठो
केतस्य विद्वान् त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥ ६ ॥ (य०) गन्धवस्त्वा विश्वा-
मसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्टये यजमानस्य परिधिरस्यगिनरिह ईरित ।

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्ये यजमानस्य परिविर स्थगिनारड
ईडितः । मिश्रावरुणो त्वोत्तरतः परिवित्तां ध्रुवेण घर्मणा विश्वस्यारिष्ट्ये
यजमानस्व परिविरस्यग्निरिडईडितः ॥ २ ॥ (सा०) ऊङ्ग्री गन्धवर्वो
अधिनाके अस्थात्मत्यङ्गचित्राविभ्रादस्यायुधानि । वसानो अत्कं सुरभि
द्वेषे कं स्वाइणं नाम जनत मियाणि ॥ ३ ॥ (अ०) प्र तद्वोचेदमृतस्य
विद्वान गन्धवर्वो घाम परमं गुहा यत् । त्रीणि पशनि निहिता गुहास्या
यस्तानि वेद स पितुष्पत्तासत् ॥ ४ ॥ एह्येहि गन्धवंसुप्रियेषा रक्तोत्तरला-
माससुव्यात्ममूर्ते । पीठेऽत्र देवेश गृहणपूजां ममाध्वरं पाहि भगवन्नमस्ते ॥
गन्धवर्य० गन्धवर्मा० ॥ ५ ॥

१५—(श०) सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभि॒ संनद्वा पतति
प्रसूता॑ । यत्रा॒ नरः सं च वि॒ च द्रवन्ति॒ तत्रास्मभ्यमिषवः॑ शर्म॑ यंसत् ॥ १ ॥
(य०) सीरी॒ बलाका॑ शार्गः॑ सूजयः॑ शायाण्डकस्ते॑ मेत्राः॑ सरस्वत्य॑ शरि॑
पुरुषवाक्॑ श्वाविद॑भीमी॑ शादूलो॑ वृकः॑ पृदाकुस्ते॑ मन्यवे॑ सरस्वते॑ शुकः॑
पुरुषवाक्॑ ॥ २ ॥ (सा०) अभी॑ षु॑ णः॑ सरवानामविशा॑ जरि॑ तृणम्॑ ।
शतं भवा॑ स्यूतये॑ ॥ ३ ॥ (अ०) अमे॑ प्रेहि॑ प्रथमो॑ देवतानां॑ चक्षुदेवानामृत
मानुषाणाम्॑ । इवक्षमाणा॑ भृगुभि॑ सजोषाः॑ स्वदर्यन्तु॑ यद्मानाः॑ स्वास्ति॑
॥ ४ ॥ समाह्वाययन्तं॑ शिखपृष्ठसंस्थं॑ श्रीभृङ्गराजं॑ जगतः॑ शरण्यम्॑ ।
खट्वाङ्गहस्तं॑ वरदं॑ जनेशं॑ यजामि॑ देवं॑ स्वकुलाभिवृद्धये॑ ॥ भृङ्गराजाय०
भृङ्गराजमा० ॥ ५ ॥

१६—(श०) मृगो॑ न भीमः॑ कुचरो॑ गिरिष्टाः॑ परावत आ॑ जगन्था॑
परस्याः॑ । सृकं॑ संशाय पवि॑ मन्द्र तिग्मं॑ वि॑ शत्रून्॑ ताल्लिं॑ विमृधो॑ नुदस्व
॥ १ ॥ (य०) मृगो॑ न भीमः॑ कुचरो॑ गिरिष्टाः॑ परावतः॑ आ॑ जगन्था॑
परस्याः॑ । सृकठ००सठ००शाय पविभिन्द्र तिग्मं॑ वि॑ शत्रून्॑ ताल्लिं॑ वि॑ मृधो॑
नुदस्व ॥ २ ॥ (सा०) मृगो॑ न भीमः॑ कुचरो॑ गिरिष्टाः॑ परावत आ॑
जगन्था॑ परस्याः॑ । सृकं॑ संशाय पविभिन्द्र तिग्मं॑ वि॑ शत्रून्॑ ताल्लिं॑ वि॑ मृधो॑
नुदस्व ॥ ३ ॥ (अ०) परेहि॑ कृत्ये॑ मा॑ तिष्ठो॑ विद्वस्येव पदं॑ नय । मुा॑
स मृगयुस्त्वं॑ न त्वा॑ निकर्तुं॑ मर्हैषि॑ ॥ ४ ॥ एह्येहि॑ गोत्रवनांदिव्यमूर्ते॑

मृगप्रकृष्टां तिहरासुरारे । पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि
भगवन्नमस्ते ॥ मृगाय० मृगमा० ॥ ५ ॥

१७—(ऋ०) यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैशा गव्यूतिरपभर्त्वा-
उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पाथ्या ३ अनु स्वाः ॥ १ ॥
(य०) उशन्तस्त्वा निधीमह्यूशन्तः समिधीमहि । उशन्तुशत आवह
पितृन् हावषे अत्तवे ॥ २ ॥ (स०) अरुचदुषपः १ शिनरप्रिय उक्षा
मिमेति भुवनेषु वाजम्बुः । मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो
गर्भमादधुः ॥ ३ ॥ (अ०) क्रव्यादमग्नमिषितो हरामि जनान् दृहन्तं
वज्जेण मृत्युम् । नि तं शास्त्रम् गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो
अस्तु ॥ ४ ॥ समाह्यान् दिव्यपितृन् कुलेशान् रक्तोत्पलाभानिह
रक्तनेत्रान् । सुरक्षमाल्याम्वरभूषितांश्च नमामि पीठे कुलवृद्धिहेतोः ॥
पितृभ्यो० पितृनावाऽ ॥ ५ ॥

१८—(ऋ०) द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽन्यान्या वत्समुप धापयेते
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाऽग्नेऽक्रो अन्यस्यां दद्वशे सुवर्चीः ॥ ६ ॥
(य०) द्वे विरूपे चरतः स्वदर्थेऽन्यान्या वत्समुपधापयेते । हरिरन्यस्यां
भवति स्वधावाऽङ्गुकोऽ अन्यस्यां दद्वशे सुवर्चीः ॥ २ ॥ , स०) तद्विष्णो
परमं पद सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवोव चक्षुराततम् ॥ ३ ॥ (अ०) यद्दुर्भगां
प्रस्तनपितां मृतवत्समुपेयिम् । अपेतु तत्र मत्पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ ४ ॥
एह्योहि दीवारिकदण्डपाणे विशालपञ्चरुहलाचतेत्र । पीठेऽत्र देवेश गृहाण
पूजां शिवाय नः पाहि भवन्नमस्ते ॥ दीवारिकाय० दीवारिकमा० ॥ ५ ॥

१९—(ऋ०) शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रहः । अधा
शतक्रत्वो यूयाममं मे आदं कृत ॥ १ ॥ (य०) नीलग्रीवाः शितिकण्ठा
दिवठं रुद्राऽ उपश्रिताः । तेषाऽपि सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ २ ॥
(स०) वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्यमत्तमो धयि दाः ॥ ३ ॥ (अ०)
रुद्रो वो ग्रीवा अक्षरैत्पश्चाच्चा पृष्ठीर्वेऽपि श्रुणातु यातुघानाः । वीरुद्धो
विश्वतोवीर्यं यमेन समाजीगमत् ॥ ४ ॥ एह्योहि सुग्रीव सुरेशपूज्य-

दशाश्ववाहविगुणात्ममूर्ते । पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां मनोरमां त्वं
भगवन्नमस्ते ॥ सुग्रीवाय० सुग्रीवमा० ॥ ५ ॥

२०—(ऋ०) ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा इव
सजित्वरीर्विष्वः पारयिष्वः ॥ १ ॥ (य०) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च
वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमा नमो गृत्सेभ्यो
गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २ ॥
(सा०) क्या नश्चित्र आ भुवदूतो सदावृथः सखा । क्या शचिष्या वृता
॥ ३ ॥ (अ०) एषा यज्ञानां वततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा०
विवेश । आण्डीक कुमुदं सं तनोति विसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पत्न्वमाना उप त्वा
तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ४ ॥ एह्यो ह विघ्नाधिपते सुरेन्द्र ब्रह्मा०
दिदेवैरभिःवद्यपाद । देवेश विद्यालय पुष्पदन्त गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥
पुष्पदन्ताय० पुष्पदन्तमा० ॥ ५ ॥

२१—(ऋ०) तत् त्वा यामि ब्रह्माण वन्दमानस् तदा शास्ते
यजमानो हर्विर्भिः । अहेऽभानो वर्णेह बाध्युरुषास मा न यायु प्र मोषी॒
॥ १ ॥ (य०) इर्मे वर्णं श्रुधो हवमया च मृडय त्वामस्युराचके
॥ २ ॥ (सा०) यदा कदा च भीढुषे स्त्राता जरेत मत्यं । आदद्वन्द्वेत
वर्णं विपा गिरा धर्तारं विक्रत नाम् ॥ ३ ॥ (अ०) अयं देवानामसुरो
विराजात वशा हि सत्या वरुणस्य राजः । ततस्पार ब्रह्माण शाशदान
उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ ४ ॥ एह्यो ह लोकेश्वर पाशपाणे यादोगणे॑
वर्णिदतपादन्द्य । पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां पाहि त्वमस्मान्भवन्नमस्ते ॥
वरुणाय० वरुणमा० ॥ ५ ॥

२२ (ऋ०) प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्ण असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये ३ सुपूतं गिरं भर दृषभाय ब्रतीचीम् ॥ १ ॥ (य०)
यमश्चिना नमुचेरासुरादधि सर्वस्वत्यसुनो दिन्द्रियाय । इमन्तर्ठ० शुक्रं
मधुमत्पत्न्युर्थं सोमर्थं राजानमिह भक्षयामि ॥ २ ॥ (सा०) यदद्य
सूर उदिसेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ ३ ॥ (अ०)

सोद्क्रामत्सासुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वायन्त माय एहीति ॥ ४ ॥ एहोहि
देवेश जगत्प्रताप महोग्ररूपासुरविश्वमूर्ते । महाबलः खञ्ज-गदाहृष्टपाणे पाहि
त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ असुराय० असुरमा० ॥ ५ ॥

२३—(क्र०) शेषन् तु त इन्द्र सत्मिन् योनौ प्रशस्तये प्रवीरवस्य
महा । सूजदण्डस्यव यद् युधा गास्विष्टदहरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ १ ॥
(य०) शं नो देवीरभिष्टयः आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्तवन्तु नः
॥ २ ॥ (सा०) त्वमित्सप्रथा अस्यगते त्रातश्रृष्टतः कविः । त्वां विप्रासः
समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेष्टसः ॥ ३ ॥ (अ०) यस्ते स्तनः
शशयुर्यो मयोभूर्यः सुमनयुः सुहवो य सुदत्रः । येन विश्वाः पुष्यसि वार्याणि
तमिह घातवे कः ॥ ४ ॥ एहोहि कीलावलिलीढ विश्वयज्ञेऽत्र देवर्षमसंघ-
सेव्ये । गृहाण पूजां विधिना प्रदत्ता शोषे सुदक्षाय नमोऽस्तु शोष ॥ ५ ॥

२४—(क्र०) पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्यमि
दस्यून् तनूभिः ॥ १ ॥ (य०) एतत्ते रुद्राऽवसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ।
अवततधर्णा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिठं सन्नः शिवोऽतीहि ॥ २ ॥
(सा०) अग्ने युड्क्षवा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः
॥ ३ ॥ (अ०) न वा उते तनुं तन्वा १ सं व पृच्छां पापमाहयं स्वसारं
निगच्छात् । असंयदेन्मनसो हृदो मे द्वाता स्वमुः शयने यच्छयीय ॥ ४ ॥
एहोहि पापेन सदा विजेन देवासुराणा सचराचराणाम् । मां पाहि नित्यं
सकलत्र पुत्रं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ पापाय० पापमा० ॥ ५ ॥

२५—(क्र०) नाशयित्रो पलाशस्या रुषसी पथिकासु । अयो ततस्य
यक्षमाणमपापा रोगनाशिनी ॥ १ ॥ (य०) द्वापेऽ अन्धसस्पते हरिद्र
नीललोहत । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेमा रोड्मो च नः
किञ्चनाममत् ॥ २ ॥ (सा०) य उस्तिया अपि या अन्तरक्षमनि निर्गा
अकृत्तदानसा । प्रभि व्रजं तात्नषे गव्यमक्षयं वर्मीवि धृष्णवा रुज ।
जोऽम् वर्मीवि धृष्णवा रुज ॥ ३ ॥ (अ०) शीर्षक्ति शीर्षमयं कर्णशालं
विलोहितम् । सर्वं शोषेण्यं इते रोगं बहिनिर्मन्त्रयामहे ॥ ४ ॥ एहोहि

रोगाधिपतेऽमरेश नानाविधैश्वर्यहयादिमुक्त । ब्रह्मादिदेवैरभिवन्दनीय
गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ रोगाय० रोगमा० ॥ ५ ॥

२६—(ऋ०) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेर्ति परिबाषमाना ।
हस्तधनो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १ ॥
(य०) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेर्ति परिबाषमानः । हस्तधनो
विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परिपातु विश्वता ॥ २ ॥ (सा०)
विष्विते पवमानाय गायत महो न घारात्यन्धो अर्षात । अहिर्न जूणमिति
सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरदवृषा हरिः ॥ ३ ॥ (अ०) ये पाकशंसं
विहरन्त मूर्वैयै वा भद्रं दूषयन्ति स्वघामिः । अहये वा तान्प्रददातु सोम
आ वा दधातु निक्रह्णतेष्पस्थे ॥ ४ ॥ समाहृयन्तं फणिराजमन्यं
नानाकणामण्डलराजमानम् । भक्तेकगम्यं जनताशारण्यं यजाम्यह नः
स्वकुलाभिवृद्धये ॥ अहये० अहिमा० ॥ ५ ॥

२७—(ऋ०) मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुणाय
वधं कुर्तसं वातस्याश्वेः ॥ १ ॥ (य०) अवतत्य घनुष्टवर्ठं सहस्राक्ष
शतेषुधे । निशीयं शत्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ २ ॥ (सा०)
विश्वकर्मन् हविषा वावृषानः स्वयं यजस्वतन्वं इस्वा हि ते । मुह्यन्त्वन्ये
अभितो जनास इहास्माकं मववा सूरिरस्तु ॥ ३ ॥ (अ०) निर्बलासं
बलासिनः शिणामि मुष्करं यया । छिनधमत्य बन्धनं मूलमूर्वार्वा इव
॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं सुरदेवसेवितं जोमूढसंकाशमुमाधिनाथम् । मुख्याभिधं
देवपिहार्यताद्यैः पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ मुख्याय० मुक्यमा० ॥ ५ ॥

२८—(ऋ०) भगमक्तस्य ते वयमुदशेम तवायसा । मूर्धनिं रथ
आरभे ॥ १ ॥ (य०) इमा रुद्राय तवसे कपदिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे
मतीः । यथा शमसद्विषदे चतुष्पदे विश्व पुष्टं ग्रामे प्रस्मिन्नातुरम् ॥ २ ॥
(सा०) इन्द्र भयामहे ततो ना अभयं कृषि । मषवन् छिंगि तव तत्त्व
क्तये वि द्विषो वि मृषो जहि ॥ ३ ॥ (अ०) पलालांतुपलालो शार्कुं कोकं
मलिम्लुचं पलीं जकम् । आश्रेषं वत्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमो लिनम् ॥ ४ ॥

एह्येहि मल्लाटशशाङ्कमूर्ते सुरासुरेरच्चितपादपद्मा । देदीप्यमानोपसरसाँगेन गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ भल्लाटमाऽ भल्लाटमाऽ ॥ ५ ॥

२९—(ऋ०) आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवानः सुश्रवस्तमः सखा वृवे ॥ १ ॥ (य०) सोमठं राजानमवमेऽग्निमन्वारमामहे । आदित्याभिष्ठणुठं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिः० स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) सोमं पुनान ऊमिणावयं वारं विधावति । अग्ने वाचः पवमानः कनिकदत् ॥ ३ ॥ अ०) सोम राजानमवमेऽग्निं गीभिर्हवामहे । आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥ एह्येहि ताराविष्पते सुरेश श्वेतोत्पालाभाससुधाकरेश । पीठेऽत्र देवश गृहाण पूजां पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ सोमाय० सोममाऽ ॥ ५ ॥

३०—(ऋ०) न चोरभयं न च सर्पभयं न च व्याघ्रभयं न च मृत्युभयम् । यस्याप मृत्युर्नं च मृत्युः सर्वं जयते ॥ १ ॥ (य०) नमोऽस्तु सर्पभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेष्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २ ॥ (सा०) यदद्य सूर उदितेऽ नागा मित्रो अर्थमा । सुवाति सविता भगः ॥ ३ ॥ (अ०) गन्धवात्सरसः सपर्णिदेवान्पुण्यजनान् पिवन् । दृष्टानदृष्टानिष्ठाभि यथा सेनामम् हनन् ॥ ४ ॥ आगच्छतागच्छत सर्पदेवाः संसारभीतिप्रमुखा वरेण्याः । घराघरा रत्नविभूषिताश्च गृहीत पूजां वरदा नमो वः ॥ सर्पेभ्यो० सपर्णिनावाऽ ॥ ५ ॥

३१—(ऋ०) रपदन्धर्वीरप्या च थोषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः । इष्टस्य मध्ये अदितिनि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो विश्वोचिति ॥ १ ॥ (य०) इड़एह्येदित एहि काम्याऽहत मयि वः कामधरण भूयात् ॥ २ ॥ (सा०) उत स्थानो दिवा भतिरदितिरूपागमत् । सा शन्ताता मयस्करदप स्निधः ॥ ३ ॥ (अ०) अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याल्टेन्द्र त्वं ज्ञो दैव्या ये । अष्टयोनिरदितिरूपाष्टमी रात्रिमभि हृष्यभेति ॥ ४ ॥ एह्येहि मातरदिते शुभप्रदे यज्ञाद्विषे सर्वं जगत्प्रिये शुभे । सुराप्रिये नो भव विश्वधात्रि यजामि देवीं प्रकृति पुराणीम् ॥ अदितये० अदितिमाऽ ॥ ५ ॥

३२—(ऋ०) इमा नु कं भुवना सीवधामैन्दश्च विश्वे च देवाः यज्ञं
च नस्तन्व च प्रजां चाऽदित्यैरिद्वः सह चीकलृपाति ॥ १ ॥ (य०)
अदितिर्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्भाता स षिता स पुत्रः । विश्वे देवाऽ
अदितिः पञ्चजनाऽ अदितिर्जितमदितिर्जनित्वम् ॥ २ ॥ (सा०) त्वया
वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् । तज्ञो मित्रो वरणो
मामहन्ता भर्दितः । सन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ (अ०) मातादित्यानां
दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः । हिरण्यवर्ण मधुकशो
घृताची महाद् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥ एह्येहि देवि त्वमिहात्रयज्ञे प्रसीद
मातर्दमनुकान्वयस्थे । दिते । महामोहकरी त्वमस्मात्पाहीन्द्रवन्दे प्रणता
वयं ते ॥ दितये० दितिमा० ॥ ५ ॥

३३—(ऋ०) आपो हिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन । महेरणाय
चक्षसे ॥ १ ॥ (य०) अप्स्वग्ने सधिष्ठव सौषधीरनु रुद्ध्यसे । गर्भे सन
जायसे पुनः ॥ २ ॥ (सा०) शं तो देवीरभिष्ठये शं तो भवन्तु पीतये ।
शं थोरभि स्वन्तु नः ॥ ३ ॥ (अ०) यसे अपोदकं विषं तत्त एता-
स्वप्रभम् । गृह्णामि ते मध्यमनुत्तमं रसमूतावमं भियसा नेशदादु ते ॥ ४ ॥
समाह्याः श्वैतसुपावनेशीरापस्वरूपाः प्रबलप्रपत्नाः । सुपाशहस्ता वरदा
अपोऽत्र यजामि देवीः कुलवृद्धिः हेतोः ॥ अदृश्यो० अप आवा० ॥ ५ ॥

३४—(ऋ०) तत् सवितुर्वृणीमह वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं
सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥ (य०) हस्त आधाय सविता
विभद्रभिठं हिरण्ययोम् । अग्नेऽर्योतिनिवाय पृथिव्याऽ अध्याभरदानुष्टुभेन
छन्दसाञ्जिरत्वत् ॥ २ ॥ (सा०) इदं श्रेष्ठं ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो
अजनिष्ठ विश्वा । यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्रयुषसे योनिमारैक्
॥ ३ ॥ (अ०) व्रमो दैवं सवितारं धातारसुत पूषणम् । त्वष्टारमभियं
व्रमस्तेनो मुक्रन्तवं हसः ॥ ४ ॥ समाह्यं दिव्यमुदारकीर्ति कलाकलाभिस्तु
महोग्रहपम् । सावित्रमन्यं सुविशालमूर्ति यजामि देवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥
सावित्राय० सावित्रमा० ॥ ५ ॥

३५—(ऋ०) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्वं
उग्रम् । महामनसां भुवनच्य वानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१॥
(य०) अषाढं युत्सु पृतनासु पश्चिम० स्वर्षमिष्प्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजाम० सुक्षिष्ठात्त० सुश्रवसं जयन्तं तथामनुमदेम सोम ॥२॥ (सा०)
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां मरुता शर्तं उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥ (अ०) प्रेता
जयता नर उग्रावः सन्तु बाहवः । तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा
अवलानुग्रवाहवः ॥४॥ एह्योहि सर्वायुधशोभमानसुरासुराणां जयकृत्महाग्र ।
जयाभिदत्तं भव नो जयाय नानाविधालङ्कृतिमन्नमस्ते ॥ जायप०
जयमा० ॥ ५ ॥

३६—(ऋ०) इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे
मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुर्ष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१॥
(य०) नमस्ते रुद्र मन्यव० उतोत्त० इषवे नमः । बाहुभ्यांमुत ते नमः ॥२॥
(सा०) जराबोधं तद्विविड्धि विशे विशे यज्ञियाय । स्तोर्मं रुद्राय
दृशीकम् ॥ ३ ॥ (अ०) मा नो रुद्रः तत्त्वना मा विवेण मा नः संस्ना
दिव्येनाग्निना । अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयेताम् ॥ ४ ॥ एह्योहि सर्वं
पिनाकपाणे सुरासुरैर्वैन्दतपादपद्म पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां रक्षाध्वरं
नो भगवन्नमस्ते ॥ रुद्राय० रुद्रमा० ॥ ५ ॥

३७—(ऋ०) वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमकतु चाटचम् ।
वनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ १ ॥ (य०) यदद्य
सूर्य उदिते नागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सवित भगः ॥ २ ॥ (सा०)
प्र मित्राय प्रार्थम्णे स चध्यमृतावसो । वरुद्ध्ये ३ वरुणे छन्दां वचः स्तोत्रं
राजसु गायत ॥ ३ ॥ (अ०) गन्धवर्पिसरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्तेनो मुञ्चन्त्वं हसः ॥ ४ ॥ आवाहये अर्यमणं महेशं
सुरासुरैरचिपतादपद्मम् । नीलाम्बुजामासमयेश गुणं गृहाण पूजां
भगवन्नमस्ते ॥ अर्यम्णे० अर्यग्नमा० ॥ ५ ॥

३८—(ऋ०) सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात्
सविताघरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वताति सविता नो रासतां
दीधिंमायुः ॥ १ ॥ (य०) विश्वानि देव सवितर्दुस्तिानि परासुव । यद्
भद्रं तत्त्वं आसुव ॥ २ ॥ (सा०) आपानासो विवरदतो जिन्वत उषसो
भगम् । सूरा अप्यं वितन्वते ॥ ३ ॥ (अ०) श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्र-
स्य मक्षत । वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भाग न दीधिम् ॥ ४ ॥
एह्योहि पीठे सवितर्दिनेश सप्ताश्वसंयुक्तरथाणिरूढ़ । रक्तोत्पलाभास-
विशालनेत्र गृहाण पूजां भगवन्नमस्तते ॥ सवित्र० सवितारमा० ॥ ५ ॥

३९—(ऋ०) परेयिवासं प्रवनो महीरणु बहुभ्यः पत्न्यामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमन जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥ (य०)
विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्त स्मिन्मत्स्व । श्रद्दस्मै नरो वच्से दधातन
यदाशीर्दी दम्पती वाममशनुतः । पुमान्पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा
विश्वाहारप एधते गृहे ॥ २ ॥ (सा०) आपानासो विवस्वतो जिन्वना
उषसी भगम् । सूरा अप्यं वि तन्वते ॥ ३ ॥ (अ०) अङ्गिरोभियंज्ञियेरा
गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हृवे यः पिता तेऽस्मिन्बहिंष्या
निषद्य ॥ ४ ॥ एह्योहि रक्ताम्बर रक्तदेह सर्वैनसोनाशनरं गहृतः ।
आरोग्यदातः सकलार्थनेत्रे विवस्वते तुश्यमहं नमामि ॥ विवस्वते०
विवस्ततमा० ॥ ५ ॥

४०—(ऋ०) उत नोऽहिकुंञ्ज्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः ।
विष्वे देवा श्रुता वृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ १ ॥
(य०) स वोधि सूरिमंघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्वेषाऽप्यं
विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) अपिवत्क्रद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रवाह्वे ।
तत्रादिष्ट पौस्यम् ॥ ३ ॥ (अ०) अभि प्रवः सुराघसमिन्द्रमर्चं यथा
विदे । यो जरिरुभ्यो मघवा पुरुषसुः सहख्येणव शिक्षति ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं
विवुधाधिपं त्वां चतुर्वेदं पर्वतसन्निभं प्रभुम् । गजाधिरूढं सकलास्त्रिदोहं
गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ विवुधाधिपाय० विवुधाधिपमा० ॥ ५ ॥

४१—(ऋ०) यस्मिन् देवा यन्मनि सञ्जरन्त्यपीच्ये ३ न बयमस्य विद्य । मित्रो नो अत्रादितिरनागान् त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ १ ॥ (य०) मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्यमम् ॥ २ ॥ (सा०) मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपींतये । या जाता पूतदक्षसा ॥ ३ ॥ (अ०) इटस्य ते विचताम्यपिनद्वमपोर्णवन् । वरुणेन समुद्भितां मित्रः प्रातर्बुद्भजतु ॥ ४ ॥ एहोहि रक्ताम्बरधारिमित्र सप्ताश्ववाहश्रिदशेकनाथ । श्वेतोत्पलाभास विशालनेत्र गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ मित्राय० मित्रमा० ॥

४२—(ऋ०) मुञ्चामि त्वा हविषा जावनाय कमज्ञातयक्षमादुत राजयक्षमात् । ग्राहिर्जप्राह यदि वेददेनं तस्या इन्द्रागनों प्र मुमुक्षमेनम् ॥ १ ॥ (य०) नाशयित्री बलासस्यार्चंड उपचितामसि । अयो षष्ठतस्य यक्षमाणां पाकारोरसि नाशनी ॥ २ ॥ (सा०) तरत्स नन्दी धावति धारा सुतस्यान्वसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ (अ०) मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्षमादुत राजयक्षमात् । ग्राहिर्जप्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्षमेनम् ॥ ४ ॥ एहोहि सर्वायुधशोभमान श्रीरामयक्षम् त्रिगुणात्ममूर्ते । पीठेत्र देवेश गृहाण पूजां देवाधिप्रवेश भमवन्नमस्ते ॥ राजयक्षमण० राजयक्षमाणमा० ॥ ५ ॥

४३—(ऋ०) द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्मद्य दिविस्पृशम् । यज्ञ देवेषु यच्छताम् ॥ १ ॥ (य०) स्योना पृथिवी नो भवानिनृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ २ ॥ (सा०) यज्ञायथा अपूर्व्य मध्यवन् वृत्रहत्याय । तत् पृथिवीमप्रययस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ३ ॥ (अ०) इयं मही प्रति गृह्णातु चर्मं पृथिवी देवि सुमनस्यमाना । अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥ एहोहि पृथिवीघरशाङ्गंपाणे उदरकीर्ते सुविशालमूर्ते । चतुभुजत्वमिह पूजयामि वरिष्ठदेवं स्वकुलाभिवृद्ध्ये ॥ पृथिवीघराय० पृथिवीघरमा० ॥ ५ ॥

४४—(ऋ०) आयो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि । पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १ ॥ (य०) यस्यास्ते घोरः आसन्जुहोम्येषां

बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्वृति त्वाहं
परिवेद विश्वतः ॥ २ ॥ (सा०) पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यससो
जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ (अ०) आपो वत्सं जनयन्तीर्गभं मे
सनैरयन् । तस्योत नायमानस्योल्ब आसीद् हिरण्ययः कस्मे देवाय हविषा
विधेम ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश्वर आपवत्सं महावलस्त्वं ग्रथितः सुरेश ।
मयूरवाट् त्रिदशैकवन्द्य गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ आपवत्साय०
आपवत्समा० ॥ ५ ॥

४५—(ऋ०) ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता । इमा
जुषस्व हर्यस्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ १ ॥ (य०) ब्रह्मा जज्ञानं
प्रथमं पुरस्ताह्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽउपमा अस्य विष्टाः
सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ २ ॥ ब्रह्मा जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताह्वि सीमतः
सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽउपमा अस्य विष्टाः सतश्च योनिमसश्च विवः
॥ ३ ॥ (अ०) य इन्द्र इव देवेषु गोष्ठवेति विवावदन् । तस्य ऋष-
भस्याङ्गानि ब्रह्मा संस्तौतु भद्रया ॥ ३ ॥ एह्येहि विप्रेन्द्र पितामहेश
हंसाधिरूढ त्रिदशैकवन्द्य । श्वेतोत्पलाभास कुशाब्जहस्त गृहाण पूजां
भगवन्नमस्ते ॥ ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा० ॥ ५ ॥

४६—(अ०) वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो
भवा नः । यत् त्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे
॥ १ ॥ (य०) वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो
भवा नः । यत् त्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे
॥ २ ॥ (सा०) वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सौम्यानाम् । द्रप्सः
पुरा भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ ३ ॥ (अ०) इहैव स्त
माप याताध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु । वास्तोष्पतिरनु वो
जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ४ ॥ एह्येहि पातालताधिवासन्
वास्तोष्पते स्वच्छ सुधर्ममूर्ते ॥ गृहाधिदेवेश परेश नित्यं गृहाण पूजां
भगवन्नमस्ते ॥ वास्तोष्पतये० वास्तोष्पतिमा० ॥ ५ ॥

४७—(ऋ०) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं
रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचिताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्
॥१॥ (य०) यं ते देवी नित्र्यं तिरावबन्धं पाशं ग्रीवास्वविचत्यम्।
तं ते विष्ण्याम्यायुषो न मध्यादधीतं पितुमद्विं प्रसूतः। नमो भूत्यै येद
चकार॥२॥ (सा०) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं
रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचिताद्विरण्यरूपमव कृणुध्वम्॥३॥
(अ०) यत्ते देवो नित्र्यं तिरावबन्धं दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्। तत्ते
विष्ण्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्विं प्रसूतः॥४॥ आवाहयेऽहं
चरकीमिह त्वा सुरारताक्षीं गुरुशङ्खधारिणीम्। ईशानकोणस्थितिमत्र
कृत्य गृहाण पूजां वरदे नमस्ते॥ चरक्य० चरकीमा०॥५॥

४८—(ऋ०) कृषभं मा समानानां सपत्नान ! विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपति गवाम्॥१॥ (य०) अक्षराजाय
कितवं कृतायादिनवदशं त्रेतायै कलिपनं द्वापरायाधिकलिपनमास्कन्दाय
सभास्थाणु मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोधातं क्षुधे यो गां विष्कृन्तप्तं
भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम्॥२॥
(सा०) यदिन्द्रं चित्रं म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो
विदद्वस उभयास्त्वा भर॥३॥ (अ०) अनाप्ता येवः प्रथमा यानि
कर्माणि चक्रिरे। वीरान्नो अत्र मा दमन्तद्व एतत्पुरो दधे॥४॥
एह्येहि दैत्ये मम वास्तुयज्ञे मार्जारितुल्याननहस्तजे त्वम्। चापासि
खटवाङ्गधरे विदारि गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ विदार्य०
विदारीमा०॥५॥

४९—(ऋ०) विदद् यदी सरम रुणमद्रेमहि पायः पूर्वं
सद्ध्यकं। अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छार र वं प्रथमा जानती गात्
॥१॥ (य०) इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जनवोऽदित्यै
भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभः उदयेण चक्रवाकौ
मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिरुपलान्प्लीहा वल्मीका-
न्कलोमभिग्लोभिर्गुलमान् हिराभिः स्वन्तीर्हंदान्कुक्षिभ्यां उ समुद्र-

मुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ २ ॥ (सा०) उभे यदिन्द्र रोदसी आप-
प्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ॥ ३ ॥ (अ०)
हृदा पृतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । सञ्चास्यानि
तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुहोमि स जुषस्व हब्मम् ॥ ४ ॥ एहोहि
दैत्यैऽसुरसञ्चमुक्ते सुपूतने मे मखकर्मणि त्वम् । पाहि त्वमस्मान् सततं
शिवाय गृहाणमेऽचां वरदे नमस्ते । पूतनायै० पूतनामा० ॥ ५ ॥

५०—(ऋ०) अध्नातरो न योष्णो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो
बुरैवा । पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ १ ॥
(य०) यस्यास्ते घोरऽआसन्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाप । यां त्वा
वनो भूमिरिति प्र मन्दते निर्वृतिं त्वाहुं परिवेद विश्वतः ॥ २ ॥
(सा०) परि प्रासिष्यदत्कवि सिन्धोरूर्माविष्टि श्रितः । कारुं
विश्वत्प्रस्पृहम् ॥ ३ ॥ (अ०) पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिद्वाँ॒
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतवः शान्तिर्विश्वे मे देवाः
शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः
शान्तिभिः सर्वे शान्तिमिः शसयामोऽहं यदिह घोर मदिह क्रूर यदिह
पावं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ ४ ॥ आवाहयिष्ये
त्वामध्वरचारचारसिद्धयै पापे तथा राक्षसि शूलवस्त्रे । रक्तामने
शस्त्रधरे महेशि गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते ॥ पापराक्षस्यै०
पापराक्षसीमा० ॥ ५ ॥

५१—(ऋ०) यदकन्दः प्रथमं जायमान उद्यान् त्समुद्रादुत वा
पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुप्यं महि जातं ते अर्बन्
॥ १ ॥ (य०) यदक्रन्दः प्रयमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्त पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्बन् ॥ २ ॥
(सा०) यदा कदा च मीढृषे स्तोता जरेत मर्त्यः । आदिवन्देत वरुणं
विपा गिरा धर्वारं विव्रतानाम् ॥ ३ ॥ (अ०) द्रष्ट्वा स्कन्द पृथिवी-
मनु द्यामिमं च योनिमनुपश्च पूर्वः । ससानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रष्ट्वा
जुहोम्यनु सप्त होत्रा ॥ ४ ॥ एहोहि देवेशि षडानन त्वं कपर्दितेर्जोऽ

शमुद्भवो हि । मयूरवाहो जितकामदेवो गृहाणपूजां भगवन्नमस्ते ॥
स्कन्दाय० स्कन्दमा० ॥ ५ ॥

५२—(क्र०) यदद्य सूर उदितेऽ नागा मित्रो अर्यमा । सुवाति
सविता भगः ॥ १ ॥ (य०) यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुनाति सवितां भगः ॥ २ ॥ (सा०) प्र मित्राय प्रार्यणे सचथ्य-
मृतावसो वरुष्ये ३ वरुणे छन्दं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥
(अ०) अर्यमणं यजामहे सुबन्धु पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो
मुच्चामि नामुतः ॥ ४ ॥ आवाहयेऽन्नार्यमणं महेशं सुरासुरैर्रचितादपद्म
नीलाम्बुजाभासं महेशकीर्ति गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ अर्यमणे०
अर्यमणा० ॥ ५ ॥

५३—(क्र०) जिह्वाश्ये ३ चरितवे मधोन्याभोगय इष्ठये रा उ-
त्वम् । दञ्चं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीर्भुवनानि विश्वा
॥ १ । (य०) हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽ-
वक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्नोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा प्राताय
स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वलगते
स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा
कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा
सर्ठोहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहा यनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा २
(सा०) तव त्यन्नर्य नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्राच्यं कृतम् । यो
देवस्य शवसा प्रारिणा अमुरिणन्नपः । भुवो विश्वमभ्जदेवमोजसा-
विदेहूज शतक्रतुविदद्विषपम् ॥ ३ ॥ (अ०) ओते मे द्यावापृथिवी ओता
देवी सरस्वती । ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमि जेभयतामिति ॥ ४ ॥
आवाहये त्वां प्रहरं च मुख्यं जृम्भायमाणं वरखड्गहस्तम् ।
प्रत्यग्दिशायां च सुरक्षणीयमत्राघिवासं कुरु जृम्भकं त्वम् ॥ जृम्भकाय०
जृम्भकमा० ॥ ५ ॥

५४—(क्र०) आपश्चित् पिष्युः स्तर्यो ३ न गावो नक्षन्नृतं

जरितो रस्त । इन्द्र याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे
विवाजान् ॥ १ ॥ (य०) का स्विदासीत्पूर्वंचित्तः किञ्चिद्विदासीद्-
बृहद्व्यः । का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ २ ॥
(सा०) प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिये अर्णसा । अशो पयसा मदिरो
न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥ (अ०) नैन रक्षांसि न
पिशाचाः सहन्ते देवनामोजः प्रथमजं हो ३ तत् । यो लिभति दाक्षायणं
हिरण्यं सजीवेषु कृष्टुते दीर्घमायुः ॥ ४ ॥ आवाहये तं पिलिपिच्छिकं
च मयूरपिच्छानि विधारयन्तम् । वामे तु हस्ते धनुरादघानं बाणं
दधानं त्वितरे तु हस्ते ॥ पिलिपिच्छाय० पिलिपिच्छमा० ॥ ५ ॥

५५—(क्र०) त्वमिन्द्र सवितवा अपस्कः रिषिता अहिना शूर
पूर्वी । त्वद् वावक्रे रथयो ३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा
॥ १ ॥ (य०) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रठ० हवे हवे सुहवर्ठ०
शूरमिन्द्रम् । ह्यामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रञ्जुं स्वस्ति नो मधवा धात्विन्द्रः
॥ २ ॥ (सा०) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हवे तु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मधवा वेत्विन्द्रः ॥ ३ ॥ (अ०) इन्द्र
त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे स पाहि मधवो अन्धसः ॥ ४ ॥
एह्येहि सवमिरसिद्धसाधयैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश । सर्वीज्यमानोऽ
प्सरसां गणेश रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥ इन्द्राय० इन्द्रमा० ॥ ५ ॥

५६—(क्र०) त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मनुषे
जने ॥ १ ॥ (य०) त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽ अवया-
सिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा देषांसि प्रमुमुग्ध्य-
स्मत् ॥ २ ॥ (सा०) अग्निस्तिगमेन शोचिषा यं सद्विश्वन्यं ३ त्रिणम् ।
अग्निनो वंसते रयिम ॥ ३ ॥ (अ०) अवोध्यग्निः समिधा जनानां
प्रति धेनुमिवायती मुपासम् । यह्वा इव प्रवयामुज्जिहा नानाः प्रभावः
सिस्ते नाकमच्छ ॥ ४ ॥ एह्येहि सवमिर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितो-
भिजृष्टम् । तेजौबतालोकनणेन सादूर्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥
अग्नये० अग्निमा० ॥ ५ ॥

५७—(ऋ०) दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम स यक्षमा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मन वते सुमन्त्वग्ने तभूष्व पात्यप्रयुच्छन् ॥ १ ॥ (य०)
यमाय त्वाङ्ग्निरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे
॥ २ ॥ (सा०) नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अश्यचक्षत
त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य द्रूतं यमस्य यौनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ३ ॥
(अ०) क्रव्यादर्मिन प्रहिणोमि द्वारं यमराज्ञो गच्छनु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ४ ॥ एह्ये हि
वैवस्वत धर्मराज सर्वमिरैचितधर्ममूर्ते । शुभाशुभानन्द शुचामधीश
शिवाय नः पाहि भगवन्नमस्ते ॥ यमाय० यममा० ॥ ५ ॥

५८—(ऋ०) सुषुप्त्वांसं न निर्झृते हृपस्थे सूर्य न दस्त्रा तमसि
क्षियन्तम् । शुभे रुक्मि न दर्शनं निखातमुदूपथुरश्चिना वन्दनाय ॥ १ ॥
(य०) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहितस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सात इत्या नमो देवि निर्झृते तुभ्यमस्तु ॥ २ ॥
(सा०) वेत्था हि निर्झृतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्धयुः
परिपदामिव ॥ ३ ॥ (अ०) इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत्त्वा निर्झृत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥ ४ ॥ एह्ये हि
रक्षोगणनायक त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः । विद्याधरेन्द्राद्यरणीय-
मान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते । निर्झृतये० निर्झृतमा० ॥ ५ ॥

५९—(ऋ०) नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं
समर्पत । दूर दृशे देव जाताय केतवे दिनस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ १ ॥
(य०) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हर्विभिः ।
अहेदमानो वरुणेह बोध्युरुशङ्क० स मा न आयुः प्रमोषीः ॥ २ ॥ (सा०)
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मत्यः वादिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा
धत्तरिं विव्रतानाम् ॥ ३ ॥ (अ०) कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो
विष्णोर्वलेन सवितुः सवेन । अग्नेर्होत्रेण प्रणु दे सप्तनांछम्बौ नाव-
मुदकेषु धीरः ॥ ४ ॥ एह्ये हि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य

सहाप्त्तरोभिः । विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहित्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥
वरुणाय० वरुणमाऽ० ॥ ५ ॥

६०—(ऋ०) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान् त्सोम पीतये ॥ १ ॥ (य०) आ नो नियुद्भिः शतिनि-
भिरध्वरठं सहस्त्रिणीभिरूपयाहि यज्ञम् । वायो अस्मिन्तस्वने मादयस्व
यूर्यं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २ ॥ (सा०) वात आ वातु भेषजं
शशभु भयोभु नो हृदे । प्र न आयूषि तारिषत् ॥ ३ ॥ (अ०)
वायुमन्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्कमे तस्मिछये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥
एह्ये हि यज्ञेश समीरण त्वं मृगाधिरूढः सहस्रद्वासङ्घैः । प्राणस्वरू-
पिन्सुखतासहायः गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ वायवे० वायुमाऽ० ॥ ५ ॥

६१—(ऋ०) आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवानः सुश्रवस्तमः सखावृद्धे ॥ १ ॥ (य०) वयर्ठ० सोम व्रते तव
मनस्तनूषु विभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ २ ॥ (सा०) तवाहं सोम
रारण सरुय इन्दो दिवेदिवे । पुरुणि बधो ति चरन्ति मासव परिधीं
रति ताँ इहि ॥ ३ ॥ (अ०) सोम ओषधीं भिरुदक्रामत्तां पुरं प्र
णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च यच्चन्तु ॥ ४ ॥
एह्ये हि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विद्वत्स्व नक्षत्रगणेन सार्थम् । सर्वौषधीभिः
पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ सोमाय० सोममाऽ० ॥ ५ ॥

६२—(ऋ०) ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः
सुपर्ण्यः । तास्ते सरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः
॥ १ ॥ (य०) तमीशानं जगतस्तस्युषस्पतिं धियत्तिजन्वमवसे हूमहे
वयम् । पूषा नो यथा वेदसामशद्वृद्धे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये
॥ २ ॥ (सा०) अभि त्वा शूर नोनुनोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य
जगतः स्वदृशमीशानमिन्द्रः तस्थुसः ॥ ३ ॥ (अ०) ईशाँ वो वेद
राज्यं त्रिसन्धे अरुणैः केतुमिः सह । ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये

च मानवाः ॥ ४ ॥ एह्ये हि यज्ञेश्वर नस्त्रिशूल कपालखट्वाङ्गधरेण-
साकम् । लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥
ईशानाय ० ईशानमा० ॥ ५ ॥

६३—(ऋ०) ब्रह्माण इन्द्राय याहि विद्वानवर्च्चस्ते हरयः सन्तु
युक्ताः । विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व
॥ १ ॥ (य०) अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहृतौ सजोषाः ।
यः शर्ठ० सते स्तुवते धायि पञ्च० इन्द्रज्येष्ठाऽ अस्माँ २ ॥ अवन्तु देवाः
॥ २ ॥ (सा०) मयि कर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी
प्रजापतिदिव द्यामिन दृहतु ॥ ३ ॥ (अ०) ब्रह्मज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि
सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुद्ध्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च
योनिमसतश्च वि वः ॥ ४ ॥ एह्ये हि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्धं
पितृदेवताभिः । सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं
शिवाय ॥ ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा० ॥ ५ ॥

६४—(ऋ०) तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते
द्योरूपस्थे : अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद् टरितः सं भरत्ति ॥
(य०) स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म स
प्रथाः ॥ २ ॥ (सा०) अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुविचक्रमे ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ ३ ॥ (अ०) शुष्मिम्तगं न ऊतये द्युन्निनं
पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं पीतये ॥ ४ ॥ एह्ये हि पातालधरामरेन्द्र
नागाङ्गनाकिन्नरगीयमानः । यक्षोरगेन्द्रामर लोकसाधं मनन्तरक्ष
धवरमस्मदीयम् ॥ ५ ॥

॥ इति महारुद्रादि यज्ञों में चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा वास्तु पूजन समाप्तः ॥

* परिशिष्ट *

विविध विषयों का विवेचन

मण्डप का नाम आदि कथन-

१—(क) आठ हाथ के मण्डप को 'जय' संज्ञा (ख) दश हाथ के मण्डप को 'विजय' संज्ञा (ग) बारह हाथ के मण्डप को 'अद्र' संज्ञा । (घ) चौदह हाथ के मण्डपकी 'सुभद्र' संज्ञा । (च) सोलह हाथ के मण्डप को 'आनक' संज्ञा । (छ) अठारह हाथ के मण्डप को 'विश्वरूप' संज्ञा । (ज) बीस हाथ के मण्डप को 'ध्रुव' संज्ञा । बाइस हाथ के मण्डप को 'सुभद्रक' संज्ञा । चौबीस हाथ के मण्डप को 'सुप्रसन्न' संज्ञा बोधायन मुनि ने कही है ।

२—चौबीस हाथ के मण्डप का नाम घन, बाइस हाथ का मण्डप दक्ष, बीस हाथ का मण्डप घर्षर, अठारह हाथ का सुघोष, कला हाथ का कामराजक, चौदह हाथ काञ्चन, बारह हाथ का विश्वम, दशहाथ का धोर, आठ का घन मण्डप विद्वान पारिज्ञात के मत से होता है ।

मेखला विचार-

३—फ़द्रह अंगुल खात पक्ष में नव अंगुल की मेखला होगी ।

४—मुष्टिमात्र कुण्ड में मेखला की ऊचाई और ऊबाई दो अंगुल, एक अंगुल और आधी अंगुल की होगी ।

५—अलिमात्र कुण्ड में मेखला तीन दो और एक अंगुल की होगी ।

६—दो हाथ के कुण्ड में मेखला छः चार और तीन अंगुल की बराबर की होगी ।

७—चार हाथ के कुण्ड में आठ, छः और चार अंगुल की मेखला होगी ।

८—छः हाथ के कुण्ड में मेखला दस, आठ और छः अंगुल की होगी ।

९—आठ हाथ के कुण्ड में मेखला बारह, दस और आठ अंगुल की होगी ।

१०—दस हाथ के कुण्ड में मेखला चौदह, बारह और दस अंगुल को होगी ।

वेदी विचार-

- १—कुण्ड कल्पद्रुममत से कुण्ड और वेदी का अन्तर सबा हाथ छोड़कर करे। यह प्रायः सोलह हाथ का मण्डप परक है।
- २—क्रियासार मत से वेदी और कुण्ड का अन्तर दो हाथ का होना चाहिये। चौबीस हाथ मण्डप परक है।
- ३—दिशा और विदिशा में वेदियों के लिए तेरहन्तेरह अंगुल मण्डप की जमीन छोड़कर वेदी बनानी चाहिये।
- ४—चतु: कुण्डों पक्षे खातं नास्मीत् युक्तं हेमाद्री—यत्रोपदविश्यते कुण्डं चतुरकं तत्र कर्मणि वेदास्ममर्धचन्द्रं च वृतं पदमनिमतं तथा। पीठ वद्वर्धयेत्कुण्डं सुभ्रमाणेष्वगर्तकम् ॥

कुण्डों के निर्माण से विविध फलों की ग्राप्ति

- १—चतुरस्तकुण्ड-शान्ति, विजय लक्ष्मी सिद्धि, स्तंभन कार्य के लिए बनाना चाहिये।
- २—अर्धचन्द्रकुण्ड—वशीकरण, प्रजा वृद्धि, संताप, शान्ति कामना, मंगल कामना और मारण कामना के लिए बनाना चाहिये।
- ३—त्रिकोण कुण्ड—आकर्षण, शत्रुनाश, और द्वेष कामना के लिए बनाना चाहिये।
- ४—षट्कोण कुण्ड—मारण, स्तंभन और उच्चाटन कार्य के लिए बनाना चाहिये।
- ५—वृत्त कुण्ड—अभिचार, सुख संपत्ति, मंगल कामना, और शान्ति कामना के लिए बनाना चाहिये।
- ६—षष्ठ्य कुण्ड—मानसिद्धि, धन कामना, आरोग्य कामना, वृष्टि कामना प्रजनन, पौष्ट्रिक कार्य तथा सब कामनाओं के लिए बनावे।
- ७—योनि कुण्ड—पुत्र, ऐश्वर्य और आकर्षण कामना के लिए बनावे।
- ८—अष्टात्वं कुण्डा—मुक्तिकामना शुभकामना और योनि सिद्धि कामना के लिए बनावे।

- ९—पञ्चास्त्र कुण्ड—भूत-प्रेतादि को हटाने के लिए बनाना चाहिये ।
 १०—सप्तास्त्र कुण्ड—अभिवार के हटाने के लिए होता है ।
 ११—आचार्य कुण्ड सम्पत्ति और ऐद्वर्य को देने वाला होता है ।
 १२—कौशिक परिशिष्ट मत से पद्मकुण्ड सब कामना के लिए बना सकते हैं।
 ‘सर्वं कर्मसुविज्ञेयं कुण्डं पक्षं निभं तु यत्’ ।
 १३—नित्यषोडशिकार्णवतन्त्र का मत है कि—

(१) योनि कुण्ड से बोलने में चबलता और आकृति उत्तम होती है ।
 (२) वर्तुल से लक्ष्मी प्राप्ति होती है । (३) अर्धचन्द्र कुण्ड से उपरोक्त तीनों वार्ते मिलती हैं । (४) षडस्त्र और त्रिकोण कुण्ड से सेचरत्व को प्राप्ति होती है । (५) चतुरस्त्र से क्षान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि और आरोग्यता प्राप्ति होती है । (६) पद्मकुण्ड से सब प्रकार की सम्पत्ति जलदी मिलती है । (७) अष्टकोण कुण्ड से अच्छा फल प्राप्ति होता है ।

विशेष-किसी का कहना है कि—जिस कुण्ड के ग्रन्थ द्वारा चतुरस्त्र आदि कुण्डों का निर्माण करे—उसी से जितने आवश्यक हो कुण्डों को बनावे । ऐसा कोई नियम नहीं है । फिर भी उनके त्याग का कोई विषय वाक्य हो ऐसा भी नहीं देखने में आया ।

कुण्ड कौमुदी—

कुण्डों की मेखला

द्वादशाङ्गुलमेखलाविधौ ध्योम चन्द्रविमिताङ्गुलस्तथा बाणचन्द्र १५
 विमितैस्तथायता रामचन्द्र-विमि १३ तैस्तुयोन्नता ॥

वारह अगुल मेखलापक्ष में योनि की ऊचाई पन्द्रह अंगुल और चौडाई तेरह अंगुल होगी ।

कुण्डकारिका के मत से—

- १—मेखला कण्ड के बाहर बनेगी कण्ड के भीतर नहीं ।
 २—कुण्ड के चारों तरफ पृथ्वी को छोड़कर बाहर-बाहर मेखला बनेगी ।
 ३—नव अंगुल ऊची, तीन अङ्गुल ऊची और विस्तार-चार अंगुल,
 तीन अंगुल और दो अंगुल अलग होगा ।

४—कुण्डो दर्धि-मेखला कुण्ठ के बाहर रहती है।

‘कण्ठे तद्वाघ्मे भेखला स्यु’

कुण्ड कल्पद्रुम—कुण्ड रूप सहशाहि मेखलाः।

नाभि विचार-

१—कुण्ड कीमुदी और कुण्ड रामवाजपेयी मत से पद्म कुण्ड के छोड़कर बाकी के कुण्डों में कुण्ड के आकार की या पद्माकार नाभी बनावे।
कुण्डकीमुदी—नाभी दो अंगुल ऊँची और चार अंगुल चौड़ी होती है।
कुण्ड कारिका—४ अंगुल चौड़ी २ अंगुल ऊँची नाभी होती है।
नाभी ठीक कुण्ड के मध्य में रहती है। नाभी पक्षकुण्ड में नाभी ६ अंगुल लम्बी और उतनी ही ऊँची होती है और वर्तुल होती है।
उसके चारों तरफ केसर लगते हैं।

आवश्यक विचार

१—गुरु (आचार्य) और ऋत्विज मिलकर कुण्ड की भूमि का परीक्षण करे। (विधान पारि जात पू० ५७८)

२—यज्ञ यागादि में ब्राह्मण युग्म रखने चाहिये।

३—अंग विकल धन-धान्य पहारी, सर्वांग विकल आदि ऋत्विज यज्ञ में वृत होने से यजमान का नाश होता है।

४—अनुष्टान क्रिया कुशल, यज्ञों की उक्रिया को जानने वाले, मन्त्रार्थ वेता, स्वस्त्री सेवी ब्राह्मणों को यज्ञ कार्य में प्रहण करना चाहिये।

५—योनि के न रहने से स्त्री किसी के मत से पुत्र का मरण होता है।

६—कुण्ड के बन जाने पर अण्डप के चौतरे के ऊपर लबा-लब आ जाने पर योनि बनाना चाहिये।

‘स्थलादारभ्य योनिः स्यात् इति स्वायंभव वचनात्।

७—योनि के एक दम ऊपर आजाने पर मध्य में कुछ ऊँची रखे। प्रयोग सारमत से मध्य में निम्न हो। क्योंकि मध्य में ऊच्चता रखने पर योनि के एक दम आगे जो छिद्र रहेगा। उस से आज्य का जाना असंभव होगा। यह कोटिहोमकारमत है।

- ८—योनी के ऊपर चारों तरफ परिघिर मेखला एक अंगुल या दो अंगुल की रखे ।
- ९—कुण्ड की मेखला के पश्चिमदिशा से या दक्षिण के ठीक मध्य से योनी बनाना चाहिये ।
- १०—रामवाजपेयी मत से पुरुष का पांचवां अंश (भाग) कर (हाथ) होता है ।
- ११—सांप्रदार्यिकमत से दुगनी से मध्य अंगुली पर्वकी पूरी लंबाई तक होता है ।
- १२—कात्यायन मत से एड़ी और को बाहुओं को ऊपर दीवाल के सहारे उठाकर या बिना एड़ी उठाए खड़े होकर नाप करावे । इसका जो पांचवा अंश हो । उसे हस्त को कुण्ड और मण्डप के कार्य में लेवे । यह पक्ष श्येनादि चिति मात्र विषय परक है । हेमाद्र आदि प्रत्यक्ष कार ने भी अपनी यही स्वीकृति दी है ।
- १३—किसी के मत से अंगठे के पर्वपर्यन्त तक भ्रहण करना लिखा है ।
- १४—कुण्ड कार्य में मुष्यङ्गुल और देहांगुल का भ्रहण करे । पंचरात्र मत से वैकल्पिक है ।
- १५—‘कर्म कर्तुः करोऽथवा’ कर्ता का हाथ पूरी अंगुली तक भ्रहण करे ।
- १६—घर के ईशान भाग में मण्डप बनवावे । यह वसिष्ठ संहिता का मत है ।
- १७—शिवालय, तीर्थ के किनारे पर, गोशाला, अपने घर में या किसी संशोधित भूमि में मण्डप बना सकते हैं । यह कुण्डकल्पद्रम का मत है ।
- १८—जलाशायोत्सर्गकार्य में सीढ़ी से दस हाथ छोड़कर ईशान, पश्चिम या उत्तर दिशा में मण्डप बनवावे ।
- १९—इसमें आचार्य कुण्ड दक्षिण दिशावाला होगा ।
- २०—एक मुख में आचार्य कुण्ड मध्य का होगा । पाँच कुण्डी में ईशान का सात कुण्डी में ईशान और पूर्व का होगा ।
- २१—शतमुख में नैऋत्यका होगा ।
- २२—नवग्रह में सूर्य प्रधान होने से आचार्य कुण्ड सूर्य का ही होगा ।
- २३—दस मुख में आचार्य कुण्ड नैऋत्य का ही होगा ।

- १—‘यो निमध्यगतं लिंगं मृत्पिण्डो’ दक्षिणोत्तरौ । कुण्ड मरीचिमाला ।
- २—योनि का मुख पूर्व दिशा की तरफ अधोमुख रहना चाहिये ।
- ३—योनी की लंबाई एक अंगुल अग्रभाग कुण्ड के मध्य में पश्चिम दिशाकी तरफ से प्रवेश कराना चाहिये ।
- ४—योनि के न होने पर अपस्मार रोग होता है ।
- ५—मानकी कमी में दरिद्रता होती है ।
- ६—सूत्रकी अधिकता से मित्र से शत्रुता होती है ।
- ७—न्यून खात में असिद्धि होती है ।
- ८—अधिक खात में असुरों का राज्य होता है ।
- ९—टूट फूट में उच्चाटन होता है ।
- १०—छिद्रता में मूक होता है ।
- ११—विद्यार्णवतन्त्रे—

योनिश्च मध्य के भागे प्राङ्मुखी मध्य संस्थिता ।

अष्टाङ्गुलैश्च विस्त्रीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलैः ॥

पृष्ठोन्नता जजोष्ठीचं सच्छद्रा मध्य तोन्नता । सच्छद्रा मध्य-
तोन्नता । सच्छद्रामध्ये ‘मध्ये त्वाज्यधृतिः समा’ इति त्रैलोक्य-
साखचनात् । आज्यधृतिरिति योनिमध्येगतं कर्तव्यमित्या हुःसां-
प्रदायिकाः ।

तन्त्रसारे—अश्वस्थपत्राकृतिः स्यान्मूलतो द्वादशाङ्गुला ।

योनिः खाते च विनता प्रतिष्ठा द्वयङ्गुला तथा ॥

कुंभ द्वयसमायुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता ।

अंगृष्ठ मेखला युक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिस्मथः ॥

कुण्डमण्डप—

योनि मध्यगतं लिंगं तुंगं पृथुकराङ्गुलम् ।

मृत्पिण्डद्वितयं तस्याः पाश्वें वा कुंभिकं भवेत् ॥

कुण्डमण्डप—

तस्मादारभ्य नालस्य योनिमध्ये मुखं स्भृतम् ।

१—योनि का मध्य कूर्म पृष्ठोन्तर होना चाहिये ।

२—योनि के ऊपर चारों तरफ एक अंगुल मेखला बनावे ।

३—योनि पीछे से कुछ ही ऊँची हो ।

१—कोटिहोमकारमतसे-घर के बाहर मण्डप बनाने की आवश्यकता हो तो अपने घर की जितनी लंबाई हो उतनी जगह छोड़कर मण्डप और कुण्ड बना सकते हैं ।

२—जमीन से एक हाथ या आधा हाथ मट्टी आदि से ऊँची करने पर वही मण्डप का स्थल (भूमि) माना जायगा । ‘स्थलादर्काङ्गुलोच्छायं मण्डपस्थलमीरितम्’ सिद्धान्तशेखर महाकपिल पञ्चरात्र मत से मण्डप भूमि एक ही हाथ ऊँची करे ।

३—ब्राह्मणादि वर्ण के व्यक्ति अपने-अपने कार्योंके अनुसार मण्डप का विस्तार कर सकते हैं । विश्वकर्मा ।

४—घन, घोष, विराज, कांचन, कामराजक, सुध्येष, घर्षर, दक्ष और गहन ये नौ नाम मण्डप के हैं ।

त्रिविधे पक्षे यथावकाश ऋत्विक् सदस्य सामाजिकाद्युपवे शादेः सौकर्ययुक्तं मण्डपं कुर्यात् । विद्यार्णवितन्व पृ २७२
कुन्डोधोन—हस्तोन्नतं तदर्थं वा मण्डप स्थलमत्रसु ।

कुण्ड कल्पद्रुम—यद्वोचिते शोचित उन्न कृते हस्तेन कद्रेन समे
सुमण्डपः ।

मेरुतन्त्र—मण्डपं नवधा कृत्वा मध्य भागेऽस्य वेदिका ।

स्तंभास्तुवेदिकायाम मण्डपारिधोच्छितावहि: ॥

भास्कर संहिता—पृ० १४

हदां समां तदाकारामीषत् प्रागुत्तरस्त्वाम् ।

प्रोच्छितां च विशेषेण स्थलां दर्पणसन्निभाम् ।

समान्या न भवेद्येन मेदनी मण्डपस्य तु ।

‘कुण्डं मध्य भागेतु कारयेच्चतुरस्त्रकम्’ इत्यादि वचनोंसे मण्डपके नवमांश में अर्थात् मण्डप के प्रधान मध्य भाग में कुण्ड बनेगा । वही प्रधान कुण्ड होगा, यह सब निवन्धों का निर्णीत पक्ष है ।

यदि तुलादान, दीक्षा आदि का कार्य होगा तो मण्डप के मध्य प्रधान नवमांश में वेदी बनेगी । क्योंकि प्रधान देश को त्याग करने का कोई भी कारण नहीं दीखता ।

यदि कहें—

एक वा शिवकाष्ठायां प्रतीच्यां कारये द्वुधः । भुक्तौ मुक्तौ तथा जीर्णोद्धारे तथैव च । दीक्षा होने तथा वृत्तं वरुण दिग्गतम् ॥

ये वचन दीक्षा तुलापुरुष विषयक हैं । कोटि होम का मत है । होम-कार का मत अतः मध्य भाग में वेदी उसके चारों तरफ नवकुण्डी या पञ्चकुण्डी को कहकर एक कुण्ड का भी विधान पक्षान्तरसे कहा है । अतः प्रधान कुण्ड मध्य का हुआ । बाकी के कुण्ड गौण हैं । शास्त्रीय सिद्धान्त से प्रधान वेदी स्थितवक्ता आदि की आहुति का विधान केवल कुण्ड में करने का मिलता है । सभी स्थिति में पंच कुण्डी या नव प्रधान कुण्डी में सब कुण्डों को ही प्रधान माना जाय इसमें और कोई युक्ति भी नहीं मालूम होती ।

शारदातिलक मत से भी तृतीय पटल में दीक्षा प्रकरण प्रारंभ है। उसीमें कुण्ड मण्डप की विधि भी लिखी है। उसमें पञ्च कुण्डी, नव कुण्डी एक कुण्डी आदि पक्ष भी लिखे हैं। उसमें यही सिद्ध होता है कि ये जो कुण्डादि का विधान दीक्षा आदि विषय को लेकर ही है।

श्री विद्यार्ण वितन्त्र ने भी-पृ. २८० में लिखा है कि [दीक्षायामष्टौ कुण्डानि कार्याति । अष्टकुण्ड करणशक्तौ प्रागादि चतुर्दिक्षु चतुरस्तार्घं चन्द्रवृजपद्माख्यानि चत्वार्येव कुण्डानि कुर्यात् । अत्राप्यशक्ता विन्द्रेशान मध्ये चतुरस्तमाचार्य कुण्ड मेक मेव कुर्यात् ।

इस से भी यही आता है, इस तरह की व्यवस्था दीक्षामें लेना। हवन प्रधान में तो प्रधान कुण्ड मध्य प्रधान में होगा, वही आचार्य कुण्ड होगा। यह रुद्रकल्पद्रुमादिको भी अभीष्टतम् है। कुण्ड रत्नावली कारने भी अपने मूल ग्रन्थ में भी कुण्डानि चाष्टास्यथ वात्र सर्वाण्याम्नाय कोणानि च वर्तुलानि इन्द्रेशमध्ये ध्यथवा स्थिकोणं वृतं गुरोः स्यात्खलु कुण्डेमत् ॥ तत्पञ्चकुण्डयाभवतीशदिक्स्थं विदिक्स्थकुण्डेस्तु विनेसु ५ कुण्डी यदैककुण्डपक्षोऽस्ति प्राच्यामथापि वा । प्रतीच्यामुत्तरस्यां वा श्री शंभुदिशिवा कुरु ॥ एकं मध्यं शुभदं मध्ये शाने जयाङ्गहवनेषु । आरभ्यैकादशिनीं लघुमहदतिरुद्रहवनविधौ ।

लिखकर टिप्पणी में लिखा शारदा तिलक के इलोक को उद्धृत किया है—

अष्टास्वाशामुरम्याणि कुण्डान्येतात्यनुक्रमात् ।
चतुरस्त योनिरधं चन्द्रव्यसं च वर्तुलम् ॥
षडस्तं पंकजाकारमष्टासं तानि नामतः ॥

इत्यादि वचनों को उद्धृत किया है।

एक कुण्डं शुभदं नद्ये० पृ. २५ यह सही मानना होगा कि हवन प्रधान कर्म में मध्य में कुण्ड होगा। एक कुण्ड पक्ष में पंच कुण्डी पक्ष में ही नवकुण्डी पक्ष में भी वह प्रधान कर्म है। उसमें मध्य में कुण्ड अत्यावश्यक है। अतः प्रधान यही है बाकी के उस कुण्ड की अपेक्षा अप्रधान हैं। प्रधान कुण्ड में ही केवल विशेष आहुतियों का विधान है। वैसे ही शतकुण्ड आदि में नैऋत्य कुण्ड को ही विशेष वर्चन से प्रधान माना है।

जय पृच्छाधिकार का मत है—शान्ति कामना के लिए उत्तर दिशा में कुण्ड, स्तंभन कामना के लिए पूर्व दिशा में, मारण कामना के लिए दक्षिण दिशा में, वशीकरणकामना के लिए पश्चिम दिशा में, दाय भाग के लिए अग्नि कोण में, विद्वेष कामना के लिए नैऋत्य कोण में, उच्चाटन कामना के लिए वायव्य कोण में, अनेक कार्यों के सिद्धि के लिए ईशान कोण में कुण्ड बनाना चाहिये।

सिद्धान्त शेखरमत से—स्तंभन कार्य के लिए पूर्व दिशा में चतुरस्त कुण्ड, ऐश्वर्य के लिए अग्निकोण में योनि कुण्ड, मारण कार्य के लिए अर्धचन्द्र कुण्ड पश्चिम दिशा में, कुण्ड द्वेष कामना के लिए नैऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड, शान्ति कामना के लिए पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड, उच्चाटन कार्य के लिए वायव्यकोण में षडस्त कुण्ड पौष्टिक कार्य के लिए उत्तर दिशा में पञ्चकुण्ड और मुक्ति कामना के लिए अष्टास्त्र कुण्ड बनाना चाहिये।

यज्ञमण्डप के सम्बन्ध में विचार-

- १ - उत्तम मण्डप बत्तीस, चौबीस, बीस, अट्ठारह तथा सोलह हाथ का लंबा और चौड़ा कहा गया है।
मध्यम मण्डप चौदह तथा बारह हाथ का लंबा और चौड़ा कहा गया है।
अधम मण्डप दस हाथ का लंबा और चौड़ा कहा गया है।
कुछ लोग आठ हाथके मण्डपकों भी अधम कहते हैं।
- २—मण्डपकी ऊँचाई एक हाथ या आधा हाथ होती है।
- ३—मण्डपके भीतर चारों दिशाओं में चार वेदी बनती हैं। जैसे—
ईशानकोणमें ग्रहवेदी, अग्निकोणमें योगिनीवेदी, नैऋत्यकोणमें
वास्तुवेदी और वायव्यकोण में क्षेत्रपालवेदी बनती है।
- ४—विष्णुयाग में प्रधानवेदी पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य में ही
होती है।
- ५—रुद्रयागमें प्रधानवेदी ईशानकोण में ही होती है।
- ६—रुद्रयागमें प्रधानवेदीके दक्षिणमें 'ग्रहवेदी' होती है।
- ७—प्रधानवेदी एक हाथ ऊँची और दो हाथ चौड़ी होती है। अन्य
क्षेत्रपाल आदि की चारों वेदियाँ एकएक हाथ ऊँची तथा एक-
एक हाथ चौड़ी होती हैं।
- ८—ग्रहवेदीमें तीन सीढ़ी (वप्र) होती हैं। ग्रहवेदीकी तरह वास्तु,
क्षेत्रपाल और योगिनी वेदीमें भी तीन-तीन सीढ़ी (वप्र) हो
होनी चाहिये।
- ९—प्रधानवेदीमें दो सीढ़ी (वप्र) होती हैं।

१०-ग्रहवेदी आदि सभी वेदियोंकी ऊपर की और मध्य की सीढ़ी तीन-तीन अंगुल ऊँची और दो-दो अंगुल चौड़ी होती हैं। नीचेवाली तीसरी सीढ़ी दो अंगुल ऊँची और दो अंगुल चौड़ी होती है।

११-ग्रहवेदी आदि सभी वेदियों की तीनों सीढ़ियोंमें ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंगकी, मध्यवाली लाल रंगकी और नीचेवाली काले रंगकी होती है।

१२-प्रधानवेदी की ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंगकी और नीचेवाली लाल रंगकी होती है।

१३-यज्ञमण्डप में सोलह स्तम्भ होते हैं। बड़े मण्डपमें अर्थात् सौ हाथके मण्डपमें पच्चास हाथके मण्डपमें और बत्तीस हाथके मण्डपमें यज्ञमण्डपकी मजबूतीके लिये सोलह स्तम्भ से अधिक स्तम्भ भी लगाये जा सकते हैं।

१४-सोलह हाथ के यज्ञमण्डप में भीतरवाले चार स्तम्भ नौ हाथके और बाहरवाले बारह स्तम्भ पाँच हाथ के होते हैं।

१५-मण्डपस्थ स्तम्भों के पाँचवें हिस्सेको भूमिमें गाढ़ देना चाहिये।

१६-यज्ञ-मण्डपमें स्तम्भों के लगानेका क्रम यह है कि-यज्ञमण्डप जितना बड़ा हो, उससे आधे प्रमाणके भीतरी चार स्तम्भ और बाहरी बारह स्तम्भ सात हाथ के लगाने चाहिये।

१७-यज्ञमण्डप के स्तम्भ यज्ञिय वृक्षके अथवा बाँसके अथवा अन्य पवित्र वृक्ष के लगाने चाहिये।

१८-यज्ञमण्डप के स्तम्भों की मोटाई सोलह अंगुल, दस अंगुल अथवा यथेच्छ कही गई है।

१९-यज्ञमण्डपके सोलह स्तम्भों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यम, नागराज, स्कन्द (कार्तिकेय) वायु, सोम, वरुण,

अष्टवसु, धनद (कुबेर), वृहस्पति और विश्वकर्मा—इन सोलह देवताओंका स्थापन होता है ।

२०-यज्ञ-मण्डपके सोलह स्तम्भोंमें इस प्रकार रंगीन वस्त्र लगाना चाहिये—मण्डपके भीतरवाले चार स्तम्भोंमें क्रमशः १—ईशान कोणके स्तम्भमें लाल वस्त्र, २—अग्निकोणके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ३—नैऋत्यकोणके स्तम्भमें काला वस्त्र और ४—वायव्यकोणके स्तम्भमें पीला वस्त्र ही होना चाहिये ।

मण्डपके बाहरवाले बारह स्तम्भोंमें इन रंगों के वस्त्र होने चाहिये—१—ईशानकोणके स्तम्भमें लालवस्त्र, २—ईशान और पूर्वके स्तम्भके मध्यमें सफेद वस्त्र, ३—पूर्व और अग्निकोणके स्तम्भके मध्यमें कालावस्त्र, ४—अग्निकोणके स्तम्भमें काला वस्त्र, ५—अग्निकोण और दक्षिणके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ६—दक्षिण और नैऋत्यकोणके मध्यके स्तम्भमें धूम्र वस्त्र, ७—नैऋत्यकोणमें सफेद वस्त्र, ८—नैऋत्य और पश्चिमके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ९—पश्चिम और वायव्यकोणके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, १०—वायव्यकोणमें पीला वस्त्र, ११—उत्तर और वायव्यकोणके मध्यमें पीला वस्त्र और १२—उत्तर और ईशानकोणके मध्यमें लाल वस्त्र ही होना चाहिये ।

२१-दश दिक्पाल की दस ध्वजा होती हैं । ये ध्वजा त्रिकोण ही होती हैं ।

२२-ध्वजा दो हाथ चौड़ी और पाँच हाथ लंबी होती है । किसी आचार्य का मत है कि ध्वजा एक हाथ चौड़ी और एक हाथ लंबी होती है ।

२३-पूर्व दिशामें पीले रंगकी ध्वजा इन्द्रकी होती है तथा इसका वाहन सफेद रंगका हाथी होता है । अग्निकोणमें लाल रंगकी ध्वजा

अग्निकी होती है व इसका वाहन सफेद रंगका मेष (मेढ़ा) होता है ।

दक्षिण दिशामें काले रंगकी ध्वजा यमकी होती है तथा इसका वाहन लाल रंगका महिष (भैंसा) होता है । नैऋत्यकोणमें नील रंगकी ध्वजा निकृतिकी होती है व इसका वाहन सफेद रंगका सिंह होता है ।

पश्चिम दिशामें सफेद रंगकी ध्वजा वरुणकी होती है तथा इसका वाहन धूम्र वर्णकी मछली होती है । वायव्यकोणमें धूम्र अथवा हरे रंगकी ध्वजा वायुकी होती है व इसका वाहन काले रंगका हरिण (मृग) होता है ।

उत्तर दिशा में सफेद अथवा हरे रंगकी ध्वजा सोमकी होती है और इसका वाहन सुवर्णके तुल्य अश्व (घोड़ा) होता है । ईशानकोणमें सफेद रंगकी ध्वजा ईशानकी होती है और इसका वाहन लाल रंगका बैल होता है ।

२४—ब्रह्माकी ध्वजा ईशानकोण और पूर्वके मध्यमें सफेद या लाल रंगकी होती है तथा इसका वाहन सफेद रंगका हंस होता है ।

२५—अनन्तकी ध्वजा नैऋत्यकोण और पश्चिम के मध्यमें सफेद रंग की या काले रंगकी होती है और इसका वाहन गरुड़ होता है ।

२६—ध्वजाओंको दस-दस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये ।

२७—हाथी, मेढ़ा, भैंस, सिंह, मछली, मृग, घोड़ा, बैल, हंस और गरुड़ ये ध्वजाओंके वाहन हैं ।

२८—दश दिक्पालकी दस पताकाएँ होती हैं । ये चतुष्कोण (चौकोर) होती हैं ।

२९—ध्वजाओंकी तरह पताकाओंका भी रंग होता है ।

- ३०—पताका सात हाथ लंबी और एक हाथ चौड़ी होती है ।
- ३१—पूर्व दिशाकी पताकामें आयुध वज्र होता है । अग्निकोणकी पताकामें आयुध शक्ति अर्थात् तलवार होती है । दक्षिण दिशाकी पताकामें आयुध दण्ड होता है । नैऋत्यकोणकी पताकामें आयुध खड्ज होता है । पश्चिम दिशाकी पताकामें आयुध पाश होता है । वायव्यकोणकी पताकामें आयुध अड़कुश होता है । उत्तर दिशाकी पताकामें आयुध गदा होती है । ईशानकोणकी पताकामें आयुध त्रिशूल होता है । पूर्व और ईशानकोणके मध्यकी पताकामें आयुध कमण्डलु होता है और पश्चिम और नैऋत्यकोणकी पताकामें आयुध चक्र होता है ।
- ३२—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अड़कुश, गदा और त्रिशूल—ये पताकाओंके आयुध हैं ।
- ३३—पताकाओंको दस-दस हाथके लंबे बाँस में लगाना चाहिये ।
- ३४—महाध्वज एक होता है और यह त्रिकोण होता है ।
- ३५—महाध्वज दस हाथका अथवा सात हाथका अथवा पाँच हाथका लंबा होता है और पाँच हाथका अथवा साढ़े तीन हाथका अथवा तीन हाथका चौड़ा होता है ।
- ३६—महाध्वज पचरंगा अथवा चित्र-विचित्र रंगका होता है ।
- ३७—महाध्वजको दस हाथ, सोलह हाथ, इकतीस हाथ अथवा बत्तीस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये ।
- ३८—महाध्वजको यज्ञमण्डप के मध्य में अथवा यज्ञपण्डपके ईशान-कोणमें ही लगाना चाहिये ।
- ३९—यज्ञमण्डप में चार मण्डप-द्वार होते हैं । यह अढ़ाई हाथ चौड़े और तीन हाथ ऊँचे होते हैं ।

४०—मण्डप के द्वार (दरवाजे) बल्ली आदिके बनते हैं ।

४१—यज्ञमण्डपके चारों दिशाओंके चारों द्वारोंमें चार 'तोरणद्वार' होते हैं । ये चारों तोरणद्वार मण्डपद्वारसे एक-एक हाथ अथवा दो-दो हाथकी दूरीपर ही बनाने चाहिये ।

४२—तोरणद्वारोंमें मण्डपके द्वारों की तरह नीचे की ओर लकड़ी (देहली) नहीं होती ।

४३—तोरणद्वार बनाने के लिये पूर्वमें पीपल अथवा वट (वरगद) की, दक्षिणमें गूलरकी, पश्चिममें पीपलकी अथवा पाकरकी और उत्तरमें पाकर वट या (वरगद) की लकड़ी होनी चाहिये । यदि चारों द्वारों के लिये उपर्युक्त अलग-अलग लकड़ी प्राप्त न हो सके, तो निर्दिष्ट लकड़ियोंमें से किसी भी उपलब्ध एक लकड़ी से भी तोरणद्वार बनाये जा सकते हैं ।

४४—पूर्वद्वार के तोरणमें पीला वस्त्र, दक्षिण द्वारके तोरणमें काला वस्त्र, पश्चिम द्वारके तोरण में सफेद वस्त्र और उत्तर द्वारके तोरण में पीला वस्त्र लगाना चाहिये ।

४५—विष्णुयाग में चारों तोरणद्वारों के पर ऊपर क्रमशः पूर्वमें शंख, दक्षिणमें चक्र, पश्चिममें गदा और उत्तरमें पद्म लगाना चाहिये ।

४६—विष्णुयाग में उत्तम मण्डपमें १४ अंगुल लंबा और ३॥ अड़गुल चौड़ा शंख तोरण पर गाढ़ना चाहिये । मध्यम मण्डपमें १२ अंगुल लंबा और अंगुल चौड़ा शंख तोरणपर गाढ़ना चाहिये । अधम मण्डपमें १० अंगुल लंबा और २॥ अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाढ़ना चाहिये ।

उपरोक्त विष्णुयज्ञ के उत्तमादि मण्डपके शंखादिके कीलोंका पञ्चमांश तोरण पर गाढ़ देना चाहिये व द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाढ़ना चाहिये ।

४७-रुद्रयागमें चारों दिशाओंमें लगे हुए चारों तोरणद्वारोंके ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिये ।

४८-रुद्रयागमें उत्तम मण्डपमें १३ अंगुल लंबा और ३। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाढ़ना चाहिये । मध्यम मण्डपमें ११ अंगुल लंबा और २॥। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाढ़ना चाहिये । अधम मण्डपमें ९ अंगुल लंबा और २। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाढ़ना चाहिये । अधम मण्डपमें २ अंगुल त्रिशूलको तोरणमें गाढ़ना चाहिये ।

उपरोक्त रुद्रयज्ञके उत्तमादि मण्डपके त्रिशूलादिके कीलोंका पञ्चमांश तोरण पर गाढ़ना चाहिये और द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाढ़ना चाहिये ।

४९-यज्ञमण्डपके बाहर अट्टारह कलश होते हैं । इनमें चार कलश मण्डपके बाहर चारों दिशाओं चारों कोनोंमें रखे जाते हैं और चार कलश चारों विदिशाओंके चारों कोनोंमें रखे जाते हैं और एक कलश पूर्व और ईशानकोणके मध्यमें ब्रह्माका होता है तथा एक कलश पश्चिम और नैऋत्यकोणके मध्यमें अनन्तका होता है । ये दस कलश दशदिक्पालके होते हैं ।

मण्डपके चारों द्वारोंपर दो-दो कलश होते हैं, जिन्हें 'द्वारकलश' भी कहते हैं । इस प्रकार यज्ञमण्डपके अट्टारह कलश होते हैं ।

५०-यज्ञमण्डप के शिखरका प्रमाण प्रायः किसी भी कुण्डमण्डप-ग्रन्थकार ने नहीं लिखा है । अतः मर्हषि कात्यायनके 'अर्थात् परिमाणम्' इस प्रमाणके अनुसार मण्डपानुकूल ही शिखरका निर्माण करना चाहिये ।

५१—यज्ञमण्डपके भीतर ऊपर छतकी ओर चारों तरफ सफेद वस्त्रका
चैदवा लगाना चाहिये ।

५२—स्त्रेभोंको वस्त्रों ढकना चाहिये । यह शारदातिलक मत है ।

५३—मण्डपके मध्यभाग ऊपर वाले हिस्से को चारों तरफ से आच्छादित
करना चाहिये । यह हेमद्रिका को भी इष्ट है । परन्तु वर्तमान
समय में मध्य भागके स्तंभोंपर टेढ़ी बल्ली शिखाकार बनाते
हैं । ऐसी भी परम्परा है ।

कोटिहोम पद्धतौ—‘मध्य स्तंभ चतुष्टय यस्योपरिशिखरवदुच्चता
कार्यति संप्रदाय विदः’ ।

स्व० पं० दौलतराम गौड़ वैदाचार्य

॥ समाप्तः ॥

संक्षिप्त-परिचय

‘कुण्डनिर्माण स्वाहाकार पद्धति’ नामक इस पुस्तक के संकलन-कर्ता व संशोधक-संपादक श्री अशोक कुमार गौड़, उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा सम्मानित, भारत के मूर्द्धन्य विद्वान्, स्वर्गीय पण्डित दौलत राम जी गौड़ वेदाचार्य के कनिष्ठ पुत्र हैं।

वर्तमान समय में आप बी. ए. द्वितीय वर्ष के छात्र हैं। अपने पिताजी की विरासत में आपने वेद व कर्मकांड का अल्प अध्ययन किया, उनके आकस्मिक निधन के पश्चात् काशी के मूर्द्धन्य विद्वानों के आचार्यत्व में अध्ययन कर रहे हैं। आपने नवग्रह रहस्य, विधान-प्रकाश-पद्धति, दुर्गोषासनप्रयोग सहित अभी तक २० पुस्तकों की रचना व हिन्दी टीका की है।

हम आपके उज्वल भविष्य की कामना करते हैं।

प्रवक्ता—
गहमर इण्टर कालेज
गहमर, गाजीपुर
उत्तर प्रदेश

भवदीय
आनन्दशक्तर शर्मा
एम० ए०
(हिन्दी-संस्कृत)

श्री अशोक कुमार गौड़ द्वारा लिखित—टीकाकृत किताबें—

१—विधान प्रकाश पद्धतिः

भाषाटीका

मूल्य ४०.००

२—कुण्ड निर्माण स्वाहाकार पद्धतिः

हिन्दी सहित

मूल्य २०.००

३—गणपति प्रतिष्ठा प्रयोगः

भाषाटीका

मूल्य ८.००

श्री गणपति प्रतिष्ठा हो रही है--

४—दुर्गापूजा पद्धतिः

भाषाटीका

(छप रही है)

५—विष्णु याग प्रयोगः

भाषाटीका

मूल्य ४०.००

लेखक-टीकाकार—स्व० वेद प्रकाश शास्त्री गौड़

संशोधक-संपादक—श्री अशोक कुमार गौड़

श्री दौलतराम गौड़ वेदाचार्य द्वारा रचित व टीकाकृत ग्रंथ-

१—श्रीमद्भागवत्

सरस्वती-टीका

मूल्य १८०,००

२—निर्णय-सिन्धु

सरस्वती-टीका

मूल्य १८०,००

३—प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव

सरस्वती-टीका

मूल्य ६०,००

४—ग्रहशांतिप्रयोग

सरस्वती-टीका

मूल्य ३०,००

५—प्रतिष्ठा-मयूर

सरस्वती-टीका

मूल्य २०,००

प्रकाशक

ठाकुर फसाद पुस्तक घंडार

कचौड़ीगली, वाराणसी

